ISSN 0970-9312

प्राथमिक शिक्षक

शैक्षिक संवाद की पत्रिका

वर्ष 41 अंक 1 जनवरी 2017

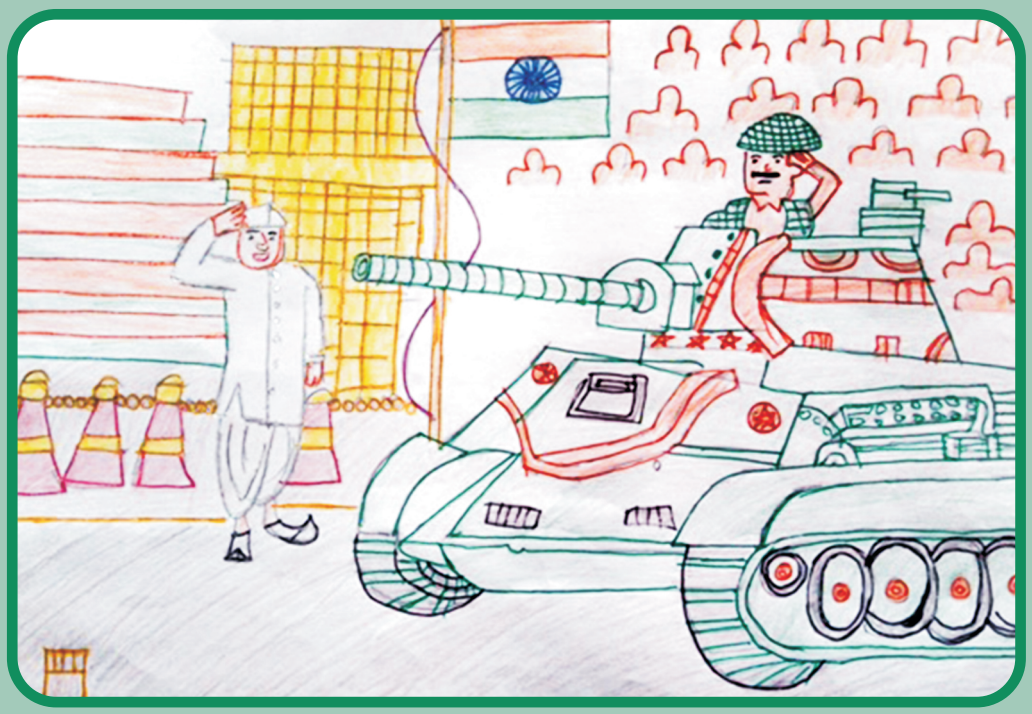

पत्रिका के बारे में

प्राथमिक शिक्षक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है, शिक्षकों और संबद्ध प्रशासकों तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित जानकारियाँ पहुँचाना, उन्हें कक्षा में प्रयोग में लाई जा सकने वाली सार्थक और संबद्ध सामग्री प्रदान करना और देश भर के विभिन्न केंद्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय-समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा जगत में होने वाली गतिविधियों पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मंच प्रदान करती है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार लेखकों के अपने होते हैं। अत: यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक चिंतन में परिषद् की नीतियों को ही प्रस्तुत किया गया हो। इसलिए परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

© 2017. पत्रिका में प्रकाशित लेखों का रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित है, रा.शै.अ.प्र.प. की पूर्व अनुमति के बिना, लेखों का पुनर्मुद्रण किसी भी रूप में मान्य नहीं होगा।

सलाहकार समिति

निदेशक, एन.सी.ई.आर.टी. : हृषिकेश सेनापति
अध्यक्ष, डी.ई.ई. : अनूप कुमार राजपूत
अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : एम. सिराज अनवर

संपादकीय समिति

अकादमिक संपादक : पद्मा यादव
उषा शर्मा
मुख्य संपादक : श्वेता उप्पल

प्रकाशन मंडल

मुख्य व्यापार प्रबंधक : गौतम गांगुली
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी) : अरुण चितकारा
संपादक : रेखा अग्रवाल
सहायक उत्पादन अधिकारी : जहान लाल

आवरण

अमित श्रीवास्तव

चित्र

मुख्य पृष्ठ – केंद्रीय विद्यालय, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
अंतिम पृष्ठ – केंद्रीय विद्यालय, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फ़ीट रोड
होस्केरे हल्ली एक्सटेंशन
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी. डब्ल्यू. सी. कैंपस
धनकल बस स्टॉप के सामने
पनिहटी
कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी. डब्ल्यू. सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781 021 फ़ोन : 0361-2674869

मूल्य एक प्रति ₹ 65.00 **वार्षिक ₹ 260.00**

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 के लिए प्रकाशित तथा चन्द्रप्रभू ऑफ़सेट प्रिंटिंग वर्क्स प्रा. लि., सी-40, सैक्टर 8, नोएडा 201 301 द्वारा मुद्रित।

ISSN 0970-9312

प्राथमिक शिक्षक

वर्ष 41 अंक 1 जनवरी 2017

इस अंक में

संवाद 3

लेख

1. '*बरखा*' क्रमिक पुस्तकमाला जेंडर के मुद्दे — उषा शर्मा — 5
2. लैंगिक समानता की अवधारणा और महिला शिक्षक की भूमिका — चित्रा सिंह — 16
3. कक्षा में बोल कर पढ़ने से समझने तक — सावन कुमारी — 25
4. गिजुभाई बधेका की शिक्षण पद्धतियाँ प्राथमिक शिक्षा के विशेष संदर्भ में — त्रिभुवन मिश्रा, सीमा सिंह — 28
5. पूर्व प्राथमिक शिक्षा भारतीय संदर्भ में आवश्यकता — पद्मा यादव — 39
6. पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक संवेगात्मक विकास — सुनैना मित्तल — 51
7. प्रारंभिक स्तर पर नाटकों के माध्यम से भाषा-शिक्षण — मेहराज अली — 55
8. भाषा के विकास में कठपुतली के खेलों का महत्त्व — पूनम — 60
9. शिक्षा में सूचना और जनसंचार प्रौद्योगिकी का उपयोग — पारस यादव — 65

बाल कहानी

10. साँप और चींटी — विपुल — 70

बालमन कुछ कहता है

11. मुझे स्कूल जाना अच्छा लगता है — दिलशाद — 72

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

परस्पर आवेष्टित हंस राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) के कार्य के तीनों पक्षों के एकीकरण के प्रतीक हैं–
(i) अनुसंधान और विकास,
(ii) प्रशिक्षण, तथा (iii) विस्तार।
यह डिज़ाइन कर्नाटक राज्य के रायचूर ज़िले में मस्के के निकट हुई खुदाइयों से प्राप्त ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के अशोकयुगीन भग्नावशेष के आधार पर बनाया गया है।
उपर्युक्त आदर्श वाक्य *ईशावास्य उपनिषद्* से लिया गया है जिसका अर्थ है–
विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

फार्म 4

(नियम 8 देखिए)

प्राथमिक शिक्षक

1.	प्रकाशन स्थान	नयी दिल्ली
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम (क्या भारत का नागरिक है?) (यदि विदेशी है तो मूल देश का पता पता	अभिषेक जैन चन्द्रप्रभू ऑफ़सेट प्रिंटिंग वर्क्स प्रा.लि. हाँ लागू नहीं होता सी–40, सैक्टर–8, नोएडा 201 301
4.	प्रकाशक का नाम (क्या भारत का नागरिक है?) (यदि विदेशी है तो मूल देश का पता पता	एम. सिराज अनवर हाँ लागू नहीं होता राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग नयी दिल्ली 110 016
5.	अकादमिक मुख्य संपादक का नाम (क्या भारत का नागरिक है?) (यदि विदेशी है तो मूल देश का पता पता	पद्मा यादव हाँ लागू नहीं होता राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग नयी दिल्ली 110 016
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 (मानव संसाधन विकास मंत्रालय की स्वायत्त संस्था)

मैं, एम. सिराज अनवर अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखे विवरण सत्य हैं।

एम. सिराज अनवर

प्रकाशन प्रभाग

संवाद

जेंडर समानता के क्षेत्र में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। जेंडर समानता का मतलब यह नहीं होना चाहिए कि स्त्री और पुरुष एकसमान हो जाएँ, बल्कि यह होना चाहिए कि विकास के अवसर स्त्री या पुरुष होने पर आधारित न हों। जेंडर संबंधी भेदभाव और इससे जुड़ी रूढ़िवादी मानसिकता एक जटिल चुनौती है। इसे समाप्त करने के लिए यह ज़रूरी है कि हम बचपन से ही बच्चों को संवेदनशील बनाएँ। पढ़ना-पढ़ाना, सीखना-सिखाना यह कक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा है। पढ़ना और समझना दोनों आवश्यक हैं। दूसरे शब्दों में पढ़ना ही समझना है। कई शिक्षकों का मानना है कि कक्षा में बच्चों द्वारा बोलकर पढ़ना, पढ़ना सिखाने के लिए बहुत उपयोगी तरीका है। इससे बच्चे देखकर, बोलकर और सुनकर पढ़ना सीखते हैं और उन्हें पढ़ना सीखने के सार्थक अवसर मिलते हैं। गिजुभाई बधेका एक महान शिक्षाविद् थे। गिजुभाई बधेका ने 20वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में शिक्षा के क्षेत्र में गुजरात में अनूठे प्रयोग किए। आज शिक्षा बाल-केंद्रित होने की ओर अग्रसर है। इस दिशा में गिजुभाई बधेका ने सालों पहले प्रयोग किए थे जो उनकी पुस्तक *दिवास्वप्न* से मालूम होते हैं। उनका बाल-साहित्य भी व्यापक था। बच्चों के प्रति उनकी समझ उनमें साफ़ झलकती थी। गिजुभाई बधेका मारिया मांटेसरी के कार्य से बहुत प्रभावित थे। बाल विकास और शिक्षा में उनकी काफ़ी रुचि थी। उन्होंने 1920 में भावनगर में 'बाल मंदिर' पूर्व प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की।

जन्म से आठ वर्ष की आयु की शिक्षा व देखभाल को प्रारंभिक बाल देखभाल एवं शिक्षा या पूर्व प्राथमिक शिक्षा कहा जाता है। आज इस तथ्य को अब सभी स्वीकार करते हैं कि बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए, विशेष रूप से अपवंचित वर्ग के बच्चों के विकास के लिए प्रारंभिक बाल देखभाल एवं शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने प्रारंभिक बाल देखभाल एवं शिक्षा को व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास तथा प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों के नामांकन और अवधारणा क्षमता में वृद्धि करने वाले महत्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार किया है। प्रारंभिक बाल देखभाल एवं शिक्षा का उद्देश्य संपूर्ण बाल विकास करना है। इसके लिए आवश्यक है कि बाल शिक्षा में सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास, शारीरिक विकास, मानसिक विकास, भाषा विकास इत्यादि के लिए अनुभव

सम्मिलित हों। नाटक, कठपुतली के खेल, कहानियाँ, कविताएँ न केवल भाषायी विकास करती हैं बल्कि बच्चों को पढ़ने के लिए तैयार करती हैं। आज शिक्षा के क्षेत्र में काफ़ी प्रयोग किए जा रहे हैं। बढ़ती तकनीकी सुविधाओं के साथ अब शिक्षा में भी संचार-साधनों का प्रयोग हो रहा है, जिससे न केवल सीखना आसान हो रहा है बल्कि अब शिक्षा, किताबों, विद्यालयों और अध्यापकों तक ही सीमित नहीं रही है, इंटरनेट ने भी शिक्षा का विस्तार कर दिया है। आजकल *डिजिटल इंडिया* के तहत ई-पाठशाला, ई-बस्ता आदि की बात हो रही है। इन्हीं सारे विषयों से संबंधित लेख प्रस्तुत प्रत्रिका में शामिल किए गए हैं। आशा है कि आपको यह अंक पसंद आएगा।

शुभकामनाओं सहित...

अकादमिक संपादक

लेख

1

'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला जेंडर के मुद्दे

उषा शर्मा*

भाषा और जेंडर के मुद्दे बेहद अहम हैं। वह इसलिए क्योंकि भाषा अपने माध्यम से बहुत कुछ संप्रेषित करती है और वह अपने 'बहाने' ऐसा बहुत कुछ 'कहने' की भी सामर्थ्य रखती है जो सतही तौर पर आसानी से नज़र आने वाला नहीं है। 'पंक्तियों के बीच पढ़ना' इसी को कहते हैं। जेंडर संबंधी संवेदनशीलता या असंवेदनशीलता भी इस भाषा के माध्यम से 'कही' जाती है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा विकसित *'बरखा'* क्रमिक पुस्तकमाला बच्चों में पठन कुशलता, चिंतन-क्षमता का विकास और विभिन्न मुद्दों के संदर्भ में अपने 'हिस्से' का अर्थ गढ़ने की दिशा प्रशस्त करती है। प्रस्तुत लेख जेंडर संबंधी विमर्श का विस्तार है कि *'बरखा'* क्रमिक पुस्तकमाला की चालीस कहानियों में जेंडर की व्याप्ति किस प्रकार हुई है और किस प्रकार से किसी जेंडर विशेष से जुड़ी रूढ़िवादिता को तोड़ने का सफल प्रयास किया गया है — इसकी जाँच करने की कोशिश की गई है। बबली, जीत, काजल, माधव, रानी, जमाल, मिली आदि सभी पात्रों की अस्मिता और पहचान को बरकरार रखने की संवेदना का स्पंदन इन सभी कहानियों में बखूबी किया जा सकता है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में जेंडर संवेदनशीलता को 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला में टटोलने का प्रयास इस लेख में किया गया है।

पृष्ठभूमि

'शिक्षा का अधिकार' ने बच्चों की शिक्षा को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। उन्हें शाला में दाखिल होने का अधिकार दिया और इस बहाने उन्हें समाज की मुख्य धारा में शामिल होने का अधिकार भी मिल गया। हमारे संविधान में भी ऐसे अनेक प्रावधान हैं जो समानता का समर्थन करते हैं और इस संबंध में अधिकार भी देते हैं। धर्म, लिंग, वर्ग, वंश, जाति, भाषा आदि के आधार पर सभी को समानता का अधिकार है। इस अधिकार की 'उपस्थिति' और 'अनुपस्थिति' दोनों के ही उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। लड़कियों और स्त्रियों को भी इस अधिकार के तहत अनेक प्रकार से लाभ पहुँचा है। उनकी स्थिति में भी सकारात्मक परिवर्तन आया है। समाज के हर क्षेत्र

* *प्रोफ़ेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

में उनकी उपस्थिति और उपलब्धि के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। लेकिन फिर भी अनेक बार ऐसे उदाहारण देखने को मिलते हैं जिनसे इस बात के संकेत मिलते हैं कि लड़कियों और स्त्रियों के प्रति हमारी सोच अभी भी नकारात्मक, संकीर्ण और पिछड़ी हुई है। उन्हें किन्हीं कार्य विशेष तक सीमित कर देना अथवा उनसे किसी व्यवहार विशेष की अपेक्षा करना इसी संकीर्णता के संकेत हैं। इतना ही नहीं हमारी अनेक सामाजिक मान्यताएँ, परंपराएँ और रीति-रिवाज़ इस तरह के हैं जिनमें जेंडर संबंधी भेदभाव झलकता है। लड़के-लड़कियों के बीच कार्यों का विभाजन भी इसी संकीर्ण सोच का परिणाम है। यह भेदभाव और इस भेदभाव को प्रत्यक्षतः व्यक्त करने वाली भाषा, जिसे हम सहज मानकर उस पर ध्यान नहीं देते, लड़कियों के समावेशन को बाधित करती है। इस ओर ध्यान देने और इसे परिवर्तित करने की आवश्यकता है। जेंडर संबंधी भेदभाव और इससे जुड़ी रूढ़िवादी मान्यताएँ, मानसिकता एक जटिल चुनौती है। इन्हें समाप्त करने के लिए शिक्षा, शिक्षाशास्त्र और इनसे संबद्ध पठन सामग्री को आधार बनाया जा सकता है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में भी इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जा रहा है कि जेंडर संबंधी संवेदनशीलता का विकास करने वाली विषय सामग्री का समावेश इनमें किया जाए। इस संदर्भ में भाषा एक अहम मुद्दा है, क्योंकि अनेक बार पाठ्य सामग्री की भाषा ही जेंडर संबंधी भेदभाव को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संप्रेषित करती है और अपना गहरा प्रभाव छोड़ जाती है। उस स्थिति में समाज का एक वर्ग स्वयं को असमावेशित महसूस करता है। इस ओर ध्यान दिए जाने की और कुछ ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

हम जानते हैं कि बच्चों की दुनिया में ही एक वर्ग ऐसा भी है जो किन्हीं कारणों से समूची शिक्षा-प्रक्रिया से बाहर है या फिर बाहर हो जाता है। यह वर्ग है उन बच्चियों का जो समाज के पटल पर कहीं किसी कोने में अपना स्थान पाती हैं। उनकी खूबियों और उनके मन के भीतर की उल्लसित उमंग को भी स्थान, सम्मान देने की आवश्यकता है। बच्चों के ऐसे वर्ग को भी शिक्षा की मुख्य धारा में समाविष्ट करने की ज़रूरत है। एक लंबे समय तक समावेशी शिक्षा का दायरा केवल निःशक्त या उन बच्चों तक सीमित था जिन्हें किसी प्रकार की कोई समस्या है। कुछ समय बाद समावेशी शिक्षा के संदर्भ में होने वाली चर्चाओं में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का ज़िक्र आने लगा। लेकिन इन्हें भी निःशक्त बच्चों के साथ जोड़कर देखा गया। जबकि सभी बच्चे विशेष होते हैं और उन सभी की आवश्यकताएँ भी विशेष ही होती हैं। फिर विशेष आवश्यकता वाले बच्चे — इस संबोधन की आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है। समावेशन सभी बच्चों के समावेशन की चर्चा करता है। इस संदर्भ में हमारी पाठ्यपुस्तकें और विभिन्न प्रकार की पठन सामग्री किस प्रकार सभी बच्चों के समावेशन की आवश्यकता को संबोधित करती हैं — यह शोध का विषय है।

बच्चे और भाषा

कभी किसी छोटे बच्चे के पास बैठकर सिर्फ़ उसकी बातें सुनना और बातें कहने के तरीके को 'निहारना' सचमुच बच्चों के भाषा-संसार का दरवाज़ा खोल

देता है। बच्चों की अपनी भाषा, अपने शब्द होते हैं जो उनके लिए काम की चीज़ होते हैं। एक व्यक्ति जो बच्चों की भाषा से गहरा प्रेम रखता है — उसके लिए तो यह एक अनमोल कुंजी है जो बच्चों के भाषा संसार का रहस्योद्घाटन करती है। किसी भी उम्र के बच्चों के शब्दों में एक प्रकार की आत्मीयता और लगाव छिपा होता है, क्योंकि वह स्वयं उनका निर्माण करता है, अपने तरीके से इस्तेमाल करता है। बच्चों की भाषा में आप-हम वे सभी रंग देख सकते हैं जितने रंगों से सराबोर उनकी अपनी दुनिया होती है। उनकी दुनिया के ये विविध रंग उनकी बातों में भी नज़र आते हैं जब वे दादी की गोद में जा छिपने की बात करते हैं या चाचा से पैसे लेकर चुस्की खरीदने की बात करते हैं। उनकी दुनिया में तो पड़ोस के चंदू से आसमान में नज़र आने वाले चाँद की बातें होती हैं, नानी की कहानी, चाची की साड़ी का तंबू, दीदी की किताबें, चोट खाए तोते और पिल्ले, बारिश के पानी में छपाका मारना — और भी न जाने क्या-क्या! हम और आप तो केवल उन लम्हों के साक्षी ही बन सकते हैं जब बच्चे अपनी नन्हीं-सी दुनिया के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। बच्चे जब अपनी ज़िंदगी के छुए-अनछुए पहलुओं के बारे में 'बड़ों' की सी बातें करते हैं तो उनके मन-मस्तिष्क में चहलकदमी करते हुए विचारों की झलक भी मिल जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भाषा और विचार के बीच बहुत गहरा संबंध होता है। एक ओर तो भाषा हमारे विचारों को बुनने का काम करती है तो दूसरी ओर भाषा हमारे उन विचारों की बुनावट में विस्तार करने, उनमें कुछ नया जोड़ने या फेरबदल करने का काम करती है। इन सब में हमारे पूर्व अनुभवों का सबसे बड़ा योगदान होता है। समृद्ध अनुभवों की इसी पूँजी के आधार पर हम जीवन-जगत को अर्थ देते-लेते हैं। यही कारण है कि एक कहानी अलग-अलग संदर्भों में, अलग-अलग पाठकों के लिए अलग अर्थ या मायने रखती है। प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की कथा' एक नन्हे पाठक के लिए महज़ दो बैलों की कहानी है। लेकिन एक वयस्क पाठक के लिए वह कहानी स्वतंत्रता संग्राम में भागीदार 'नरम दल' और 'गरम दल' का प्रतीकात्मक विवरण है। ऐसे ही उनकी कहानी 'बड़े भाई साहब' भी देखी जा सकती है। बच्चों की हैसियत से पढ़ेंगे तो बहुत मज़ेदार लगेगी और कई जगह बाल सुलभ सवाल भी अनुभूत होंगे। लेकिन जब इसे वयस्क और उसमें भी शिक्षक की हैसियत से पढ़ेंगे तो यही कहानी मौजूदा शिक्षा-व्यवस्था पर कई प्रहार और सवाल खड़े करते हुए बेहद गंभीर विमर्श से ओत-प्रोत लगेगी। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे-आपके आस-पास मिल जाएँगे जो इस बिंदु का समर्थन करेंगे कि अलग-अलग पाठ्य-सामग्री अलग-अलग रूपों में हमारे मन-मस्तिष्क को प्रभावित करती है। बच्चे इसका अपवाद नहीं हैं! शब्दों का जादू तो हर शख्स के सिर चढ़कर बोलता ही है!

भाषा और जेंडर संवेदनशीलता

भाषा और जेंडर के मुद्दे बेहद अहम हैं। वह इसलिए क्योंकि भाषा अपने माध्यम से बहुत कुछ संप्रेषित करती है और वह अपने 'बहाने' ऐसा बहुत कुछ 'कहने' की भी सामर्थ्य रखती है जो सतही तौर पर आसानी से नज़र आने वाला नहीं है। 'पंक्तियों के

बीच पढ़ना' इसी को कहते हैं और पाठक की यही कुशलता उसे बहुत कुछ ऐसा 'समझा' जाती है जो वास्तव में 'समझने-परखने' लायक है। जेंडर संबंधी संवेदनशीलता या असंवेदनशीलता भी इस भाषा के माध्यम से 'कही' जाती है। आइए, कुछ ऐसे ही उदाहरणों को लेते हैं जहाँ किसी साहित्यिक कृति अथवा पाठ्य-सामग्री की भाषा अपना रंग छोड़ती है और उस भाषा का जादू हमारे विचारों को गाहे-बगाहे प्रभावित करता है —

"कल हमारे यहाँ इंस्पेक्टर था। मैंने खूब अच्छे जवाब दिए तो इंस्पेक्टर साहब ने मुझे शाबाशी दी और सर ने भी!"

"शाबाश! लो हमने भी शाबाशी दे दी!" और पापा ने उसकी पीठ थपथपा दी।

"और खेल कौन-कौन-से खेलते हो?"

"ताश, लूडो, कैरम..."

"क्या कहा, ताश, लूडो, कैरम — धत्तेरे की! ***यह भी कोई खेल हुए, लड़कियों के। क्रिकेट खेलो, हॉकी खेलो, कबड्डी खेलो, लड़कों वाले खेल खेलो। घर से बाहर निकलकर भागने-दौड़ने वाले...***

अच्छा, " पेड़ पर चढ़ सकते हो?..."

"तैरना सीखा? ..."

"साइकिल चलाना आता है?..."

*"****छी-छी, इतने बड़े होकर भी मम्मी के बिना नहीं रह सकते। यह गंदी बात है, बेटे!*** *अब तुम्हें मम्मी के बिना रहने की आदत डालनी चाहिए।* ***तुम क्या लड़की हो जो मम्मी से चिपटे-चिपटे फिरते हो?****"*

(आपका बंटी – मन्नू भंडारी)

काकी का नाम जनकदुलारी है। पूरब में काकी चाची को कहते हैं। ... काकी की शादी पहले कहीं और हुई थी। आदमी उमर में थोड़ा पक्का था। पूछने पर काकी ने बताया — "उमिर तो रहै हमका गोद में लैके खिलावै के और करैं सक-सुबहा! कौनो सुख नहीं जाना! जैसे कन्ता घर रहे वैसे रहे बिदेस। दाना न घास खरहरा दोनों जून। हम रहैं मजबूत — भागि आए मायके। बाप ने समझ लिया, बोले — ***"तुम बिटिया नहीं बेटवा हो, घर का काम करो और रहौ...*** *रिश्तेदार जो खार खाए बैठे थे, थानेदार को कुछ सुँघाया — सरकार इसकी बेटी भी ज़ालिम है, नाक कटाकर मायके में कमाती है। थानेदार बोला — क्यों जी, बुलाओ जनकदुलारी को — देखें कैसी है। सिपाही घर पहुँचे तो काकी ने कहा — "थानेदार होंगे अपने घर के। ...." सिपाहियों ने कहा — "ज़्यादा नखरा न बघारो, चार हंटर पड़ेगा तो नशा हिरन हो जाएगा।* ***सीधी चला नहीं तो झोटा पकड़कर ले जाएँगे।****"*

(जनकदुलारी हमारे गाँव की – विश्वनाथ त्रिपाठी)

छोटी-सी लड़की थी वह। करीब दस साल की। एक बड़े साँप का पीछा कर रही थी। मैं उसके पीछे भागी और उसकी चोटी पकड़कर उसे ले आई। "ना, मोइना ना" मैं उस पर चिल्लाई।

"क्यूँ?" उसने पूछा —

"क्यूँ? क्यूँ दूँ उसे धन्यवाद? उसकी गोशाला धोती हूँ, हज़ारों काम करती हूँ। उसके लिए कभी धन्यवाद देता है मुझे? मैं क्यूँ उसे धन्यवाद दूँ?"

मोइना अपने काम पर भाग गई। खीरी सर हिलाती रह गई। फिर मुझसे बोली — ***"ऐसी लड़की नहीं देखी कभी। बस क्यूँ? क्यूँ? की रट लगाए रहती है।****"*

गाँव के पोस्टमास्टर ने तो उसका नाम ही 'क्यूँ-क्यूँ छोरी' रख दिया है।

"मोइना मुझे तो अच्छी लगती है।" मैंने खीरी से कहा। —

"क्यूँ मुझे बाबू की बकरियाँ चरानी पड़ती हैं? उसके लड़के खुद क्यूँ नहीं चराते?*" मछलियाँ बोल*

क्यूँ नहीं पातीं? अगर कई तारे सूरज से बड़े हैं तो वे इतने छोटे क्यूँ नज़र आते हैं?

(क्यूँ-क्यूँ छोरी– महाश्वेता देवी*)*

इन तीनों उदाहरणों में यह साफ़ झलकता है कि तीनों में लड़कियों या स्त्री वर्ग की जो छवि उकेरने की कोशिश की गई है वह हमारे मानस पटल पर अलग-अलग प्रभाव छोड़ती है। पहले उदाहरण में लड़के और लड़की के बीच की गहरी खाई स्पष्ट रूप से नज़र आती है। लड़के और लड़कियों द्वारा खेले जाने वाले खेलों में भी 'क्लीयर कट विभाजन' नज़र आता है। लड़के बाहर खेले जाने वाले खेल खेलते हैं, पेड़ पर चढ़ते हैं, तैरते हैं जबकि लड़कियाँ घर के भीतर खेले जाने वाले खेल, जैसे — *'ताश, लूडो, कैरम'* खेलती हैं। बंटी के पापा उससे कहते हैं — *'क्रिकेट खेलो, हॉकी खेलो, कबड्डी खेलो, लड़कों वाले खेल खेलो। घर से बाहर निकलकर भागने-दौड़ने वाले---'* यह साफ़-साफ़ घोषणा पाठकों के मन पर अपना प्रभाव छोड़ती है। इतना ही नहीं बंटी के पापा उससे अपनी माँ से दूर सोने, रहने की बात कहते हैं और साथ ही उनका यह कहना कि *'तुम क्या लड़की हो जो मम्मी से चिपटे-चिपटे फिरते हो?'* लड़कियों के प्रति समाज में व्याप्त रूढ़िवादी और जड़ मानसिकता का परिचायक है। एक छोटा बच्चा अपनी माँ से लाड-दुलार का भी हकदार नहीं है? क्या लड़के और लड़की अपनी माँ के प्रति अपने लगाव को अलग-अलग तरीके से व्यक्त करने के लिए विवश हैं? क्या इन दोनों के मानदंडों में अनिवार्यतः कोई अंतर है? *'छी-छी'*, *'गंदी बात'*, *'चिपटे-चिपटे फिरना'* आदि ऐसे भाषा-प्रयोग हैं जो लड़कियों के प्रति एक खास तरह के 'पूर्वाग्रह को खुले तौर पर व्यक्त करते हैं। भाषा के माध्यम से व्यक्त होने वाला लड़कियों के प्रति यह 'दुर्भाव' समाज में बुरी तरह से व्याप्त है और लड़कियाँ इस 'दुर्भाव' से अभिशप्त हैं।

दूसरे उदाहरण में व्यक्त भाव कि *'तुम बिटिया नहीं बेटवा हो, घर का काम करो और रहौ--'* साफ़ तौर पर लड़के और लड़कियों के बीच के अंतर की घोषणा करता है। यदि समाज में लड़के और लड़की समान होते तो यह वाक्य ही बेमानी होता। लेकिन प्रसंगवश आए इस वाक्य ने जेंडर से जुड़े अनेक जटिल सवालों को हमारे समक्ष रखा है। जनकदुलारी अपने मायके यानी 'पिता के घर' वापस आती है तो पिता कहते हैं कि 'तुम बिटिया नहीं बेटवा हो'। इसका सीधा-सा निहितार्थ यह है कि बेटे को विवाह के बाद अपने घर में रहने का अधिकार है, लेकिन बेटी को विवाह के बाद अपने घर में रहने का अधिकार नहीं है। उसके द्वारा स्वयं अपने घर में रहने को 'वैध' बताने के लिए उसे 'बेटा' घोषित करना ज़रूरी है। इतना ही नहीं जनकदुलारी के लिए प्रयुक्त ये वाक्य भी दर्शाते हैं कि स्त्रियों के प्रति किस प्रकार का रवैया रहा है— *क्यों जी, बुलाओ जनकदुलारी को—देखें कैसी है।/ सिपाहियों ने कहा— "ज़्यादा नखरा न बघारो, चार हंटर पड़ेंगा तो नशा हिरन हो जाएगा। सीधी चला नहीं तो झोटा पकड़कर ले जाएँगे।"* ये वाक्य किसी भी दृष्टि से गरिमापूर्ण नहीं कहे जा सकते। किसी खास वर्ग के लिए इस तरह के भाषा-प्रयोग उस वर्ग को हाशिए पर लाकर 'छोड़' देते हैं।

इसी तरह तीसरे उदाहरण में मोइना का चरित्र एक ऐसी लड़की के रूप में दर्शाया गया है जो 'सवाल'

पूछती है और बहुत सवाल पूछती है। सवाल पूछने और सवाल खड़े करने में अंतर होता है। मोइना ये दोनों काम बखूबी करती है। *"ऐसी लड़की नहीं देखी कभी। बस क्यूँ? क्यूँ? की रट लगाए रहती है।"* इसका एक अर्थ यह भी निकलता है कि सामान्यतः लड़कियों को सवाल पूछने का अधिकार नहीं है या सवाल पूछना उनके स्वीकृत स्वभाव का हिस्सा नहीं है। यही कारण है कि मोइना के सवाल पूछने को इतने आश्चर्य और 'अस्वाभाविक' तौर पर प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य और उसकी भाषा में अनेक ऐसी संभावनाएँ हैं जिन्हें जेंडर की दृष्टि से देखने और समझने की ज़रूरत है। बच्चों के लिए लिखा गया, रचा गया साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है।

'बरखा' और जेंडर संवेदनशीलता

पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की पठन सामग्री भी बच्चों के अनुभव संसार को विस्तार देती है, उनके अनुभव संसार का हिस्सा बनती है और उनकी सोच को प्रभावित करती है। इतना ही नहीं यह पठन सामग्री उनमें समझकर पढ़ने की कुशलता का भी विकास करती है। समझकर पढ़ने का अर्थ है— अपने अनुभवों के साथ उस सामग्री को जोड़ते हुए यह समझने का प्रयास करना कि वस्तुतः क्या कहने का प्रयास किया गया है और इस पठन सामग्री में अपने 'हिस्से' का अर्थ खोजना। यह पठन सामग्री बच्चों को पढ़ने का आनंद भी देती है और उनके चिंतन को विस्तार देती है। उनमें इस क्षमता का विकास भी करती है कि विभिन्न विचार-बिंदुओं के संबंध में अपनी राय बना सकें। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा विकसित 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला एक ऐसा ही प्रयास है जो बच्चों में पठन कुशलता, चिंतन-क्षमता का विकास और विभिन्न मुद्दों के संदर्भ में अपने 'हिस्से' का अर्थ गढ़ने की दिशा प्रशस्त करती है। प्रस्तुत लेख जेंडर संबंधी विमर्श का विस्तार है कि 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की चालीस कहानियों में जेंडर की व्याप्ति किस प्रकार हुई है और किस प्रकार से किसी जेंडर विशेष से जुड़ी रूढ़िवादिता को तोड़ने का सफल प्रयास किया गया है—इसकी जाँच करने की कोशिश की गई है। बबली, जीत, काजल, माधव, रानी, जमाल, मिली आदि सभी पात्रों की अस्मिता और पहचान को बरकरार रखने की संवेदना का स्पंदन इन सभी कहानियों में बखूबी किया जा सकता है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में जेंडर संवेदनशीलता को 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला में टटोलने का प्रयास इस लेख में किया गया है।

'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला एक शिक्षाशास्त्रीय संसाधन है जो इस सिद्धांत पर आधारित है कि बच्चों में पढ़ने-लिखने की नैसर्गिक क्षमताएँ होती हैं। यदि प्रारंभ से ही बच्चों को पढ़ने-लिखने के सार्थक अवसर दिए जाएँ तो वे समझ के साथ पढ़ना सीख सकते हैं और सफल पाठक बन सकते हैं। 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला उन सभी बच्चों को पढ़ना-लिखना सीखने में मदद करती है जो अभी पढ़ना-लिखना सीखने के शुरुआती दौर में हैं। 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला में कहानियों की कुल चालीस किताबें हैं जो बच्चों के निकटीय परिवेश के इर्द-गिर्द बुनी-रची गई हैं। इनमें बच्चे अपनी दुनिया की झलक पा सकते हैं। इन कहानियों के चार स्तर हैं और स्तर के अनुसार कहानियों के वाक्यों और

उपकथानक की गहनता बढ़ती जाती है। इन कहानियों में रिश्ते भी हैं तो खाने-पीने की चीज़ें भी हैं। पशु-पक्षी, खेल-खिलौने, वाद्य-यंत्र, आस-पास की चीज़ें — सभी कुछ इन कहानियों में देखने को मिलता है। शुरुआती पढ़ने-लिखने में ये किताबें मदद करती हैं और बच्चों को अपनी ही दुनिया से रू-ब-रू होने का अवसर देती हैं।

'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला में जेंडर संबंधी संवेदनशीलता और जेंडर-आधारित समावेश को बखूबी ध्यान में रखा गया है। यहाँ एक बात स्पष्ट करना ज़रूरी है कि जेंडर संवेदनशीलता की चर्चा में लड़कियों को बढ़-चढ़कर प्रस्तुत करना या उन्हें लड़कों की तुलना में बेहतर रूप में प्रस्तुत करना उद्देश्य नहीं है बल्कि लड़कियों को किसी बँधे-बँधाए साँचे से बाहर लाने और उनके प्रति संकीर्ण मानसिकता को तोड़ने का प्रयास किया गया है। और इस संबंध में जो किया गया है वह बेहद सहज है और कहीं भी आरोपित नज़र नहीं आता। 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला में कुल दस पात्र हैं जिनके इर्द-गिर्द कहानियों का ताना-बाना रचा गया है। इनमें से छह पात्र लड़कियाँ हैं जो विभिन्न कथा-वस्तुओं में अपनी जगह बनाती हैं। ये पात्र हैं — रमा, रानी, काजल, बबली, तोसिया और मिली। ये सभी अपनी-अपनी खूबियों के साथ कथा-पटल पर नज़र आती हैं। जीत, माधव, जमाल और मदन इनके साथ ही खड़े नज़र आते हैं — उनसे श्रेष्ठ या कमतर नहीं। ये सभी लड़के-लड़कियाँ बच्चों की सहज दुनिया का हिस्सा बनते हैं। इनमें कहीं कोई भेदभाव, विरोध या द्वंद्व नज़र नहीं आता। सब हिले-मिले से एक-दूसरे के 'साथ' नज़र आते हैं। आइए, 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियों में जेंडर-आधारित समावेशन को समझने का प्रयास करते हैं।

सामान्यतः यह समझा जाता है कि पतंग उड़ाना लड़कों का काम है, उनका खेल है या उनका जन्मसिद्ध अधिकार है या फिर पतंग उड़ाने पर उनका ही वर्चस्व है। 'हमारी पतंग' शीर्षक कहानी में इस मिथक को तोड़ा गया है। इस कहानी में तोसिया और मिली तथा उनकी माताएँ पतंग बनाती हैं, पतंग उड़ाती हैं और बहुत ऊँची पतंग उड़ाती हैं। पतंग बनाने की पूरी प्रक्रिया को भी बखूबी समझाया गया है। *'मिली का मन हुआ कि वह भी पतंग उड़ाए'* — यह वाक्य किसी लड़की द्वारा समाज की रिवायतों को अपनी नियति न मानने की ओर संकेत करता है वरना सामान्यतः बच्चियाँ या लड़कियाँ या महिलाएँ पतंग उड़ाने की बात सोचती भी नहीं हैं और 'दिखती' भी नहीं हैं। मिली की माँ बहुत सहज भाव से उसकी इस इच्छा का मान रखती है और कहती है – 'चलो पतंग बनाते हैं।' तोसिया भी अपनी माँ के साथ पतंग उड़ाती है। इस कहानी के माध्यम से बच्चों में यह सोच विकसित होती है कि लड़कियाँ भी पतंग उड़ा सकती हैं। वह किसी खास व्यक्ति तक सीमित नहीं हैं। ऐसा भी नहीं है कि पतंग उड़ाने के संदर्भ में लड़कियों की भूमिका केवल चरखी पकड़ने तक ही सीमित है। एक सामान्य कहानी में ऐसा भी हो सकता था कि लड़का पतंग उड़ा रहा है और लड़की चरखी पकड़कर खड़ी है। 'हमारी पतंग' कहानी इस सामान्य सोच को भी तोड़ती है।

हमारे समाज में जिस तरह पतंग उड़ाने को लेकर संकीर्ण सोच है, वैसी ही सोच पेड़ पर चढ़ने को लेकर भी है। आम तौर पर हम कहानियों में लड़कों को ही

पेड़ों पर चढ़ते हुए देखते हैं। अगर लड़के-लड़कियों का समूह भी है तो भी लड़के ही पेड़ पर चढ़ेंगे। लेकिन 'पका आम' कहानी में तोसिया अपने स्कूल में लगे आम के पेड़ पर से आम तोड़ने की कई प्रकार से कोशिश करती है। वह लोहे के फ़ाटक पर चढ़ने की कोशिश करती है, लेकिन नहीं चढ़ पाती, क्योंकि लोहा गरम है। वह हार नहीं मानती और दूसरा उपाय सोचने लगती है। वह स्कूल की चारदीवारी के भीतर से दीवार के उस पार कूद जाती है और आम के पेड़ पर चढ़ जाती है। 'उसे पेड़ पर चढ़ना अच्छी तरह आता था।' यह वाक्य इस बात की घोषणा करता है कि पेड़ पर चढ़ना केवल लड़कों का अधिकार नहीं है। लड़कियाँ भी पेड़ पर अच्छी तरह से चढ़ सकती हैं। तोसिया के माध्यम से पाठकों को यह समझने का भी अवसर मिलता है कि लड़कियाँ किसी भी दृष्टि से कमज़ोर नहीं हैं। वे एक बार जो ठान लें, उसे अपने बलबूते पर और अपनी सूझ-बूझ से पूरा कर सकती है

'*मिली का मन भी साइकिल चलाने को हुआ।---मिली ने मम्मी से साइकिल सिखाने के लिए कहा। मम्मी मिली को साइकिल चलाना सिखाने लगीं। ----मम्मी साइकिल के पीछे-पीछे चल रही थीं*' मिली से जुड़ी एक और कहानी – 'मिली की साइकिल' में मिली के माध्यम से एक सामान्य लड़की की इच्छा और मिली की मम्मी के माध्यम से एक सामान्य महिला का यह पक्ष उजागर होता है कि लड़कियाँ बहुत कुछ सीखना चाहती हैं, सीखती हैं और साइकिल चलाना सिखाने में माँ की भी भूमिका हो सकती है। अन्यथा हम यह पाते हैं कि साइकिल चलाना केवल लड़कों का ही अधिकार है और सामान्यतः पिता ही साइकिल चलाना सिखा सकते हैं। लेकिन यह कहानी इस भ्रांति को तोड़ती है और जेंडर संबंधी स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास करती है। लड़कियाँ भी अपनी स्वतंत्र सोच एवं इच्छा रखती हैं, उनकी भी अपनी पसंद-नापसंद होती है—इस विचार को संप्रेषित करते हुए मिली की एक और कहानी देखी जा सकती है–'मिली के बाल'। '*मिली को चोटी बनवाना पसंद नहीं था। मिली को बाल खुले रखना पसंद था। उसे फैले-फैले बाल अच्छे लगते थे। मम्मी चोटी गूँथती तो मिली परेशान हो जाती।... मिली को बहुत दर्द होता था।*' ये पंक्तियाँ पाठक को यह विस्तार से जानने-समझने का अवसर देती हैं कि मिली को क्या पसंद है और क्या पसंद नहीं है। एक दिन मिली पापा के साथ जाकर अपने बाल कटवा आती है। उसके बाद जो होता है वह सामान्य पाठक की सोच के विपरीत हो सकता है। माँ मिली को डाँटने की बजाय प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरती है और उसे गले लगा लेती है। अब तेल मलने में मिली को कोई कष्ट नहीं होता। मिली के माता-पिता का व्यवहार इस ओर संकेत करता है कि उन्हें अपनी बेटी की इच्छाओं का मान रखना आता है और मान रखा जाना चाहिए। 'मिली के बाल', 'मिली की साइकिल', 'हमारी पतंग' लड़कियों के स्वतंत्र अस्तित्व, उनकी स्वतंत्र सोच, इच्छा और पसंद-नापसंद की कहानियाँ हैं जो पाठक को यही संदेश देती हैं कि लड़कियाँ भी स्वतंत्र हैं और उनकी स्वतंत्रता का सम्मान किया जाना चाहिए।

'*बरखा*' क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियों में बच्चों के द्वारा खेले जाने वाले खेलों का भी चित्रण मिलता है। लेकिन इन कहानियों की विशेषता यह है

कि इनमें गुड्डे-गुड़ियों से खेलने वाली लड़कियों की एक आम छवि को तोड़ने का सफल प्रयास किया गया है। 'गिल्ली-डंडा' कहानी में '*बबली को तैरना आता था।*' वह तालाब में से गिल्ली लाती है और '*सबके साथ गिल्ली-डंडा खेलने लगती है।*' वह ज़ोर से डंडा घुमाती है और गिल्ली फिर से तालाब के पार चली जाती है। इस कहानी में लड़कों के साथ लड़की को भी गिल्ली-डंडा खेलते हुए दिखाया गया है। बबली इस खेल को खेलने में किसी भी तरह से कमज़ोर नहीं है — इस बात की घोषणा तब हो जाती है जब यह बताया जाता है कि '*गिल्ली फिर से तालाब के पार चली गई।*' इसी तरह 'छुपन-छुपाई' में जीत अपनी बाज़ी देता है और सौ तक गिनकर सबको ढूँढ़ने निकलता है। वह बारी-बारी से सबको खोज लेता है लेकिन केवल नाज़िया बच जाती है। वह उसे खूब खोजता है – आँगन में, चादर के पीछे, बाहर लेकिन वह कहीं नहीं मिलती। जीत पेड़ के नीचे खड़े होकर सोचने लगता है तभी नाज़िया ऊपर से कूदकर उसे धप्पा दे देती है और जीत को फिर से बाज़ी देनी पड़ती है। वह फिर से गिनती गिनने चल पड़ता है। इस कहानी में शाज़िया की चतुराई को दर्शाया गया है। इन कहानियों में लड़के और लड़कियाँ मिलकर ही खेल खेलते हैं। किसी को छोटा-बड़ा नहीं दर्शाया गया है। 'आउट' कहानी में जीत और बबली मिलकर कभी गिट्टे खेलते हैं तो कभी रस्सा कूदते हैं। कभी छुपन-छुपाई खेलते हैं तो कभी गिल्ली-डंडा। फिर वे क्रिकेट खेलते हैं। बबली खेल की अगुवाई करती है और ज़ोर का बल्ला घुमाती है तो बॉल मोहित के आँगन में चली जाती है। अब समस्या आती है कि गेंद कैसे लाएँ? गेंद न होने से खेल रुक जाता है। तब बबली अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए कपड़े, कागज़, कतरनों, पन्नियों और सुतली की मदद से एक गेंद बना देती है। जब जीत बल्ला घुमाता है तो कपड़े की गेंद खुल जाती है। इस स्थिति में भी बबली की चतुराई के दर्शन होते हैं। वह गेंद के खुल जाने पर उसके एक कपड़े को पकड़कर आउट-आउट चिल्लाती है। जीत अपने माथे पर हाथ रख लेता है। इस तरह इस कहानी में लड़कियों द्वारा मुख्यतः क्रिकेट खेले जाने और उनकी सूझ-बूझ का परिचय मिलता है।

हम अकसर देखते हैं कि लड़के पुराने टायर को ठेलते हुए तेज़ी से चलाते हैं। लेकिन 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की 'झूला' कहानी में बबली भी टायर को तेज़ दौड़ाती है। जीत के कहने पर कि उसे झूला झूलना अच्छा लगता है तो बबली और वह झूला ढूँढ़ने लगते हैं। वे दोनों पेड़ की डाली पर लटककर झूला झूलते हैं, लेकिन उन्हें मजा नहीं आता। फिर वे लोहे के पाइप पर लटककर झूलते हैं लेकिन जीत के हाथ में दर्द हो रहा था। बबली को एक तरकीब सूझती है। वह कहती है कि अपने टायर से झूला बना लेते हैं। टायर को पेड़ पर कौन लटकाएगा — इस बात को लेकर दोनों में छीना-झपटी होती है और टायर हवा में उछलकर पेड़ की डाली पर लटक जाता है। तब जीत उछलकर टायर में बैठ जाता है और बबली टायर और जीत को धीरे-धीरे झुलाने लगती है। यह प्रसंग भी इस आम मान्यता या छवि को तोड़ता है कि केवल लड़कियाँ ही झूला झूलती हैं और लड़के उनके झूले को झुलाते हैं। यहाँ बबली जीत को झूला झुलाती है। इस कहानी में बबली अपने बुद्धि-चातुर्य का भी परिचय देती है।

'बबली का बाजा' कहानी में बबली को घर की सफ़ाई के समय एक डिब्बा मिलता है जिसे हिलाने पर आवाज़ आती है। वह डिब्बा खोलकर देखती है तो पता चलता है कि उसके अंदर चावल हैं। वह उस डिब्बे को लेकर सो जाती है। चूहा रात में चावल खा लेता है। अगले दिन बबली माँ से चावल माँगती है तो माँ यह कहते हुए मना कर देती है कि चावल तो खाने का होता है। यह सुनकर बबली उदास होकर छत पर जाती है। तभी बबली की नज़र सलवार पर पड़ती है और वह उसका नाड़ा निकालकर डिब्बे के दोनों ओर छेदकर बाँध देती है। इस तरह बबली का बाजा यानी उसकी ढोलक बन जाती है। बबली के माध्यम से लड़कियों की बुद्धिमता का संदेश पाठकों तक पहुँचता है। वे संज्ञानात्मक तौर पर भी लड़कियों को कम नहीं आँकेंगे।

'चलो पीपनी बनाएँ' कहानी में भी बबली नाज़िया, मदन और जीत को पीपनी बनाना सिखाती है। वह सभी को एक-एक करके स्पष्ट रूप से निर्देश देती है कि पहले गुठली को धो लो, उसे साफ़ कर लो, उसका छिलका निकाल लो और उसे थोड़ा-सा घिस लो। इस तरह सारे बच्चे बबली के निर्देशन में आम की गुठली से पीपनी बजाना सीखते हैं। इस कहानी के माध्यम से लड़कियों की नेतृत्व क्षमता का भी परिचय मिलता है।

संगीत कला को लेकर हमारे समाज में यह मान्यता रही है कि गायन लड़कियों का क्षेत्र है और वादन लड़कों का और अगर लड़कियों को भूले-से भी वादन के क्षेत्र में अवसर दिए जाएँ तो उन्हें सितार या हारमोनियम तक ही सीमित कर दिया जाता है। जबकि लड़कों के लिए संगीत कला के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक विकल्प मौजूद हैं। 'तबला' कहानी में जीत पिताजी से तबला बजाना सीखता है। एक दिन उसे तबला नहीं मिलता तो वह पूरे घर में उसे खोजता है। वह छत पर जाता है तो देखता है कि बबली तबला बजा रही है। वह उससे तबला छीनने की कोशिश करता है लेकिन बबली पूरे अधिकार से कहती है कि तबला उसका भी है। पापा दोनों की लड़ाई रोकते हैं और कहते हैं कि बबली सुबह तबला बजाना सीखेगी और जीत शाम को। इस कहानी के माध्यम से लड़कियों के संगीत कला संबंधी मिथक को तोड़ा गया है कि लड़कियाँ केवल गायन के लिए ही उपयुक्त पात्र हैं। जीत और बबली के पिता का व्यवहार भी यह संदेश देता है कि लड़का और लड़की दोनों बराबर हैं। बबली भी अपनी बात को पूरे आत्मविश्वास के साथ कहती है कि यह तबला उसका भी है। वह भी उन लड़कियों का प्रतिनिधित्व करती है जो लीक से हटकर कुछ अलग करना चाहती हैं।

प्रायः घर और रसोई से जुड़े काम लड़कियों या स्त्रियों के ही माने जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि घर सँभालना और विशेषकर चूल्हा-चौका सँभालना केवल लड़कियों की ज़िम्मेदारी है। सामान्यतः आपने देखा होगा कि किताबों में महिला पात्र ही ये सब करती दिखाई दी जाती हैं। लेकिन 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की 'चावल', 'चाय', 'भुट्टा', 'फूली रोटी' कहानियों के पात्र जमाल और मदन रसोई के कामों में न केवल रुचि लेते हैं बल्कि उन्हें बखूबी निभाते भी हैं। 'चावल' कहानी में एक दिन जमाल और मदन को ज़ोर की भूख लगती है तो वे मिल-जुल कर चावल बनाने की योजना बनाते हैं। इसके लिए वे क्रमबद्ध तरीके से गाजर और मटर छीलते हैं,

आलू-प्याज़ काटते हैं और चावल बनाकर अपनी भूख मिटाते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में इस बात का पता चलता है कि रसोईघर और उसके कामों से उनका परिचय है। 'चाय' कहानी में जब एक दिन जमाल को ज़ुकाम हो जाता है और उसका मन चाय पीने को करता है तो मदन उसके लिए चाय बनाता है। चाय बनाने में वह लौंग और अदरक डालकर पानी को खूब उबालता है। लेकिन चाय में चाय की पत्ती और अदरक बहुत ज़्यादा पड़ जाते हैं तो मदन दूध और चीनी डालकर चाय को दोबारा से उबालता है। तब जमाल चाय पीता है। यह कहानी इस ओर भी संकेत करती है कि मदन को यह पता है कि कड़वी चाय को किस प्रकार से सही किया जा सकता है। 'भुट्टा' कहानी में जमाल के घर मदन और जमाल घर-घर खेलते हैं। तभी जमाल के घर उसके पापा के दोस्त आते हैं। वे दोनों मिलकर उनके लिए भुट्टे बनाते हैं। जमाल भुट्टे उबालता है और मदन भुट्टे को भूनता है। उन्होंने अपने-अपने भुट्टों पर नमक और मसाला लगाया। पापा के दोस्त और उनकी पत्नी उनके भुट्टों की खूब तारीफ़ करते हैं। 'फूली रोटी' में जमाल रोटी बनाने की कोशिश करता है। जब वह सही तरीके से रोटी बना लेता है और रोटी को सेंकने पर वह फूल जाती है तो वह बड़े गर्व से कहता है कि रोटी उसने बनाई है। इस प्रकार *'बरखा'* क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियाँ बच्चों में मिल-जुलकर घर के कामों को करने की अभिप्रेरणा देती हैं।

इस प्रकार *'बरखा'* क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियाँ जेंडर संवेदनशीलता और जेंडर समानता की भावना को पोषित करती हैं। वे पाठकों का ध्यान बरबस इस ओर खींच ही लेती हैं कि लड़के और लड़कियों के कामों और अवसरों में कहीं कोई भेदभाव नहीं है। उसके सभी पात्र, चाहें वे लड़कियाँ हों या लड़के हर तरीके के कार्य करते हैं। घर-घर खेलने जैसे खेल जो केवल लड़कियों तक ही सीमित समझे जाते थे – जमाल और मदन उसे खेलते हैं और इस संकीर्ण मानसिकता को दूर करते हैं। सामान्यतः समाज में लड़कियों और लड़कों के बीच न केवल काम का ही बँटवारा है, बल्कि खेलों का भी बँटवारा किया जाता है। लेकिन 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियाँ विभाजन की इस रेखा को मिटाती हैं और पाठकों में इस भावना एवं विचार को पोषित करती हैं कि लड़कियाँ भी हर तरीके का खेल खेल सकती हैं। कहानियों में लड़कियों और लड़कों का प्रतिनिधित्व समान रूप से नज़र आता है और दोनों की छवि को गरिमामय रूप में प्रस्तुत करती हैं। बबली, जीत, काजल, माधव, रानी, जमाल, मिली आदि सभी पात्रों की अस्मिता और पहचान को बरकरार रखने की संवेदना का स्पंदन इन सभी कहानियों में बखूबी महसूस किया जा सकता है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में जेंडर संवेदनशीलता को *'बरखा'* क्रमिक पुस्तकमाला में न केवल अनुभूत किया जा सकता है बल्कि उसके प्रत्यक्ष दर्शन किए जा सकते हैं। यह *'बरखा'* क्रमिक पुस्तकमाला की सफलता कही जा सकती है।

संदर्भ

एन.सी.ई.आर.टी. 2008. *'बरखा'*, क्रमिक पुस्तकमाला. 2008. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

2

लैंगिक समानता की अवधारणा और महिला शिक्षक की भूमिका

चित्रा सिंह*

लैंगिक समानता की अवधारणा समाज में व्याप्त स्त्री-पुरुष के बीच मौजूद असमानता को दूर करने की एक रणनीति है। इसके द्वारा उन ऐतिहासिक और सामाजिक प्रतिरोधों को दूर करने का प्रयास किया जाता है जो कि स्त्री और पुरुष को समान होने से रोकते हैं। इनमें वे सकारात्मक क्रियाएँ भी शामिल हैं जो स्त्री के प्रति एक विशेष व्यवहार को इंगित करती हैं। लैंगिग समानता की रणनीति शिक्षक को ध्यान में रखते हुए तैयार करना दो कारणों से ज़रूरी है – पहला, यह एक अंतर्राष्ट्रीय उद्देश्य भी है, और दूसरा, शिक्षक इसमें केंद्रीय भूमिका रखते हैं। यूनेस्को ने अपने ग्लोबल पोस्ट–2015 के एजुकेशन एजेंडा में इसे मुख्य स्थान दिया है। स्त्री-शिक्षक इस मामले से ज़्यादा कारगर भूमिका निभा सकती हैं, वे इसे ज़्यादा अच्छी तरह महसूस कर सकती हैं कि लैंगिक असमानता ने किस तरह समाज और उसके विकास को प्रभावित किया है। क्योंकि स्त्री-शिक्षक कभी न कभी इसका शिकार भी रही ही होती हैं। प्रस्तुत आलेख में इस दिशा में स्त्री-शिक्षक की भूमिका और प्रशिक्षण को ध्यान में रखते हुए कुछ मुख्य बिंदुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना

एन.सी.ई.आर.टी. के पोज़ीशन पेपर *नेशनल फ़ोकस ग्रुप ऑन जेंडर इश्यूज़* के बिंदु 2.6 — टीचर्स एज़ एजेंट ऑफ़ चेंज में शिक्षक के लिए Pronoun 'Her' का प्रयोग किया गया है 'His' का नहीं। इससे पता चलता है कि महिला-शिक्षक की शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक असमानता दूर करने में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है और आगे भी उसे इस दिशा में उत्प्रेरक ही नहीं, बल्कि सूचना के प्रसारण में मुख्य भूमिका अदा करने वाला बताया गया है। यह सिर्फ़ नीतिगत रूप से ही सही नहीं है वरन् स्वाभाविक भी है, अंततः यह स्त्री ही है जो मानव की प्रथम शिक्षक होती है। ऐसा कहना उसकी भूमिका को सीमित करना नहीं है बल्कि उसके नैसर्गिक गुणों का अधिकतम उपयोग करने की दिशा में एक प्रयास है, क्योंकि जो हम स्वाभाविक रूप से करते हैं उससे हम कहीं

* *सहायक प्राध्यापक,* क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल

ज़्यादा आगे बढ़ सकते हैं। यदि हम लैंगिक समानता के लिए स्त्री-शिक्षक की भूमिका को केंद्र में रखते हैं तो हम वे लक्ष्य आसानी से पा सकते हैं विशेष रूप से वे लक्ष्य जो ऐतिहासिक और सामाजिक कारणों से ज़्यादा कठिन हैं।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था के साथ सकारात्मक बात यह है कि स्त्री-शिक्षक अपेक्षाकृत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं, अन्य किसी क्षेत्र की तुलना में। दुनिया के विकसित देशों में भी ऐसा नहीं है, जबकि भारत में शिक्षा को स्त्री के लिए बेहद स्वाभाविक और सुविधापूर्ण व्यवसाय माना जाता है और उन्हें इसे अपनाने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित भी किया जाता है। यही नहीं शिक्षा संस्थानों के प्रमुख पदों, जैसे – प्राचार्य पद, विशेष रूप से विद्यालयी शिक्षा में, के लिए महिला को ज़्यादा उपयुक्त माना जाता है और अधिकांश विद्यालयों के प्राचार्य पदों पर हम उन्हें नियुक्त देख सकते हैं।

इसलिए ज़रूरी हो जाता है कि लैंगिक समानता की दिशा में उनकी भूमिका पर ज़ोर दिया जाए ताकि इसके उद्देश्यों की पूर्ति आसानी से हो सके।

स्त्री-शिक्षक का लड़कियों की शिक्षा पर प्रभाव

एन.सी.ई.आर.टी. का उपयुक्त लेख स्त्री-शिक्षक की भूमिका को लड़कियों के अधिकाधिक शिक्षा लेने से जोड़ता है। विद्यालयों में स्त्री-शिक्षक होगी तो लड़कियाँ विद्यालयों में ज़्यादा प्रवेश लेंगी, ऐसा माना जाता है, और यह सच भी है। लेकिन वे कहते हैं कि यही एक मात्र वजह नहीं होनी चाहिए। यदि स्त्री-शिक्षक को केंद्रीय भूमिका निभानी है तो स्त्री-शिक्षक के विद्यालयों में जीवन अनुभवों, शिक्षक-प्रशिक्षण की प्रासंगिकता और सब तक पहुँच और इस व्यवसाय में उसके करियर के विकास पर भी ध्यान देना होगा। लैंगिक समानता के परिप्रेक्ष्य में उनकी भूमिका मज़बूत तब ही हो सकती है जब शिक्षण कार्य में उनका अनुभव सकारात्मक हो। यही समाज में उनके स्थायी प्रभाव को प्रेरित कर सकता है। लेकिन स्त्री-शिक्षक को केवल लड़कियों की शिक्षा के संदर्भ में ही आगे नहीं किया जाना चाहिए बल्कि लड़कों की शिक्षा में भी उनकी अहम भूमिका होनी चाहिए। लैंगिक समानता असल में तभी पाई जा सकेगी।

स्त्री-शिक्षक–छात्राओं की उत्प्रेरक के रूप में

प्राथमिक विद्यालय स्तर पर लड़कियों के प्रवेश में स्त्री-शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। समाज की जो हालत अभी तक है उसमें परंपरागत रूप से लड़कियों की शिक्षा कन्या विद्यालय में स्त्री-शिक्षक द्वारा दिए जाने को महत्त्व दिया जाता है। रूढ़िवादी समाज इसके लिए हमेशा तैयार रहता है। ऐसे में स्त्री-शिक्षक छात्राओं के पक्ष में उनके परिप्रेक्ष्य में और उनकी ज़रूरतों तथा उनके अनुकूल वातावरण तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

एन.सी.ई.आर.टी. के उपर्युक्त लेख में छात्राओं की शिक्षा के संदर्भ में स्त्री-शिक्षक की विभिन्न भूमिकाओं का भी उल्लेख है, उसमें बताया गया है कि–

- स्त्री-शिक्षक छात्राओं के लिए आदर्श भी स्थापित कर सकती हैं।

- छात्राएँ बीच में विद्यालय न छोड़ें इसमें विद्यालय में स्त्री-शिक्षक की उपस्थिति महत्वपूर्ण कारक हो सकती है।

इन व्यावहारिक कारणों के इतर स्त्री-शिक्षक छात्राओं को एक सुरक्षित, तनावरहित तथा खुला वातावरण प्रदान करने में भी सहायक हो सकती हैं। छात्राएँ अपनी बात पुरुष-शिक्षक के बनिस्बत स्त्री-शिक्षक से आसानी से कह सकती हैं, उससे सहज रूप से बात कर सकती हैं और अपना दृष्टिकोण भी बाँट सकती हैं, जो पुरुष-शिक्षक के साथ आसान नहीं होता। यही समस्या छात्रों की स्त्री-शिक्षक को लेकर भी हो सकती है। वे भी पुरुष शिक्षक के साथ आसानी से खुल के अपनी बात कह सकते हैं। इस मनोवैज्ञानिक और व्यवहार संबंधी समस्या का समाधान भी खोजा जाना चाहिए। जहाँ एक ओर पुरुष-शिक्षकों को छात्राओं के शिक्षण के लिए विशेष प्रशिक्षण प्रदान किए जाने की आवश्यकता है वहीं स्त्री-शिक्षक को भी छात्रों के लिए विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

इस लेख में एक और मुख्य बिंदु है, वह है स्त्री-शिक्षक का एक नीति-निर्माता के रूप में योगदान। छात्राओं की स्थिति सुधारने और उनकी समस्याओं को हल करने में यह महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। बस ये सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि स्त्री-शिक्षकों की भूमिका केवल बैठकों और सामान्य गतिविधियों तक ही सीमित न रह जाए बल्कि छात्राओं की प्रवक्ता की हैसियत से भी वे नीति-निर्माण में दखल दें। दूसरा महत्वपूर्ण बिंदु हर स्तर पर और हर विषय में स्त्री-पुरुष शिक्षक संतुलन पर ज़ोर देता है। स्त्री और पुरुष शिक्षकों के बीच विषयों का बँटवारा-सा कर दिया गया है। भाषा, कला और सामाजिक विज्ञान के विषय स्त्री-शिक्षकों के स्वाभाविक विषय मान लिए गए हैं और गणित तथा विज्ञान पुरुष-शिक्षकों के। यदि यह असंतुलन दूर कर दिया जाए और गणित तथा विज्ञान जैसे विषय भी स्त्री-शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने लगें तो छात्राओं में भी इन विषयों के प्रति रुचि जाग्रत होगी। ये वे विषय हैं जो लड़कों के विषय माने जाते हैं। इस पद्धति में परिवर्तन किया जाना चाहिए। स्त्री-शिक्षक के लिए माने जाने वाले विषयों को पुरुष-शिक्षकों द्वारा भी पढ़ाया जाना चाहिए।

यह दृष्टि लैंगिक समानता के विकास में महत्वपूर्ण हो सकती है किंतु इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए की नैसर्गिक क्या है। यदि कोई छात्रा स्त्री-शिक्षक के लिए ही समझे जाने वाले विषयों में रुचि रखती है तो उसे इसके लिए पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जो उसी विषय की स्त्री-शिक्षक बेहतर तरीके से दे सकती है। इसी तरह यदि कोई स्त्री-शिक्षक भी इन विषयों में स्वयं को स्वाभाविक रूप से झुका पाती है तो इसके लिए भी अनुकूल आधार प्रदान किया जाना चाहिए।

स्त्री-शिक्षक की समस्या–लैंगिक समानता के परिप्रेक्ष्य में

इस बिंदु को हम न्यूयॉर्क की एक माध्यमिक शाला शिक्षिका एमी विलियम्स के उदाहरण से बेहतर समझ सकते हैं, वे लिखती हैं–

"मैं वह दिन कभी नहीं भूल सकती जब शिक्षण के अपने प्रारंभिक दौर में एक दिन एक पुरुष-शिक्षक गलती से मेरी कक्षा में चला आया, यहाँ तक तो सब नॉर्मल था लेकिन इसकी जो प्रतिक्रिया छात्रों में हुई वह विचलित कर देने वाली थी। लगातार बात करते रहने वाले मेरे 8वीं कक्षा के बच्चे इससे एकदम सतर्क हो गये, सीधे बैठ गए और ध्यान से मुझे सुनने लगे। ये मेरे लिए आश्चर्यजनक था क्योंकि इन्हीं छात्रों का ध्यान खींचना मेरे लिए मुश्किल होता था, जबकि मैं अत्यंत सावधानी से अपना पाठ तैयार करती थी, कक्षा में उसे पढ़ाती और दोहराती भी थी और यह काफी मुश्किल होता था। मैं स्तब्ध थी कि पुरुष-शिक्षक की क्षणिक उपस्थिति मात्र वह प्रभाव पैदा कर रही थी जो मैं काफी मेहनत के बाद भी पैदा नहीं कर पा रही थी। " (चैपमैन, 1994)

सभी स्त्री-शिक्षक कभी न कभी मिलती-जुलती परिस्थितियों से दो-चार होती ही हैं। विशेष रूप से छात्रों द्वारा उन्हें गंभीरता से नहीं लिया जाना इसका कारण होता है। इसके लिए हमारी सामाजिक संरचना ज़िम्मेदार है। सबसे पहले इसे बदलना होगा। लेकिन यह एक समय लेने वाली योजना है और काफ़ी लंबी लड़ाई है, अतः शिक्षिका को ही इसके लिए तैयार करना सबसे ज़्यादा आवश्यक है।

उपर्युक्त शिक्षिका ने इस स्थिति से निपटने के लिए क्या किया? इस बारे में निम्न बिंदु वे हमारे सामने रखती हैं। ये स्त्री-शिक्षक के लैंगिक समानता के लिए दिए जाने वाले प्रशिक्षण के प्रमुख बिंदु भी हो सकते हैं। वह लिखती हैं कि उन्होंने इस बारे में अपने गुरु की सलाह मानी और यह किया। वे आगे लिखती हैं कि–

"सबसे पहले मैंने अपनी आवाज़ ऊँची की और स्वयं को छात्रों के समक्ष तने कंधों के साथ प्रस्तुत किया। यह एक सिद्ध बात है कि पुरुष हर क्षेत्र में अपना वर्चस्व चाहता है। कक्षाओं में भी यही दृष्टिकोण काम कर रहा होता है और शिक्षिका का उपर्युक्त बर्ताव छात्रों को उन्हें गंभीरता से लेने के लिए प्रेरित कर सकता है।" (चैपमैन, 1994)

वे आगे लिखती हैं कि अपने अध्यापन के चौथे साल में जाकर उन्होंने कक्षा में अपनी उपस्थिति को मज़बूती से रख इस पारंपरिक अवधारणा को चुनौती देने के प्रयास शुरू किए जो एक शिक्षक, विशेष रूप से एक शिक्षिका को कैसा लगना और दिखना चाहिए, पर ज़ोर देती हैं। उन्होंने देखा कि अधिकांश छात्र अच्छे शिक्षण को अच्छे लैक्चर से जोड़ते हैं, अतः उन्होंने छात्रों को बताया कि सबसे सफ़ल कक्षा गतिविधि वह होती है जिसमें छात्र ही प्रश्न पूछते रहते हैं और अधिकांश समय अपनी बात रखते रहते हैं। सिर्फ़ अच्छा लैक्चर ही काफ़ी नहीं होता।

एक शिक्षिका के रूप में उनके द्वारा किया गया ये नवाचार तमाम शिक्षिकाओं के लिए उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस तरह के नवाचार अभी तक सिर्फ पुरुष आधिपत्य का क्षेत्र ही रहे हैं और एक शिक्षिका भी ऐसा कर सकती है यह सिर्फ़ चौंका देने वाला विषय ही रहा है और हो सकता है।

एक और नवाचार जो उन्होंने किया वह था समावेशी व सहयोगी प्रकृति को बढ़ावा देना जो प्रायः स्त्रियों से संबंधित माने जाते हैं। उन्होंने छात्रों को दूसरे छात्रों के विचारों पर आपसी सहयोग से काम करने को

प्रेरित किया ताकि उनमें उस पाठ के बारे में अंतर्दृष्टि विकसित हो सके जो वे पढ़ रहे थे।

इसका उन्हें परिणाम भी मिला जब एक छात्र ने उन्हें बताया कि इससे उसकी संप्रेषण क्षमता काफी बढ़ गयी थी और उसने कक्षा में पाठ पर चर्चा को और छात्रों के लिए भी सहज और सुविधाजनक बनाना प्रारंभ कर दिया था जबकि पहले वह चर्चा में अपनी धाक जमाने की कोशिश करता था। उसने उन्हें लिखा–

"अब मुझे मेरे साथियों के साथ में काम करना अच्छा लगता है, मैं अनुभव करता रहा था और करता हूँ कि नेतृत्व-क्षमता में मैं हमेशा अव्वल रहा हूँ लेकिन आपकी कक्षा में चर्चाओं ने मुझे पीछे आराम से बैठ अपने साथियों को बोलते व चर्चा करते देखना सिखाया।" (चैपमैन, 1994)

हम देख सकते हैं कि छात्र का इस तरह पिछली सीट पर बैठना नकारात्मक नहीं एक सकारात्मक परिवर्तन था। एक शिक्षिका ही ऐसा परिवर्तन ला सकती है जो नैसर्गिक रूप से चीज़ों और परिस्थितियों को सुविधाजनक बनाती रही है। यह स्त्री ही है जो आधिपत्य नहीं सहयोग में विश्वास करती रही है और तर्क नहीं, भावनाओं को महत्वपूर्ण मानती रही है।

स्त्री के इन्हीं गुणों को जो आधुनिक समय में उसकी कमज़ोरी की तरह प्रस्तुत किए जाते रहे हैं, एक शिक्षिका द्वारा शिक्षण के प्रमुख औज़ारों की तरह विकसित किया जाना चाहिए जैसा उपरोक्त शिक्षिका ने किया।

लैंगिक समानता के लिए शिक्षक-शिक्षिका का प्रशिक्षण—एक तुलना

लैंगिक समानता के लिए जब शिक्षकों के प्रशिक्षण की बात की जाती है तो प्रायः यह पुरुष-शिक्षक पर केंद्रित हो जाती है शिक्षिका प्रायः भुला दी जाती है। पूरी दुनिया में लैंगिक असमानता, जो विद्यालय स्तर पर विद्यमान है, को लेकर जो भी शोध और अध्ययन किए गए हैं, वे प्रायः शिक्षकों और छात्रों पर हैं, शिक्षिकाओं और छात्राओं पर न के बराबर हैं। इनमें सिर्फ़ शिक्षक के कक्षा में छात्राओं की तुलना में छात्रों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार को आधार बनाया गया है और उसमें लैंगिक असमानता को प्रश्नांकित किया गया है। शिक्षिकाओं के बारे में यदि अध्ययन व शोध हैं भी तो उनमें शिक्षा के क्षेत्र में उनके प्रतिशत पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है व इसे ही रेखांकित किया गया है या यह बताया गया है कि स्त्रियों को केवल शिक्षिका के रूप में ही स्वीकारा गया है तथा इस क्षेत्र में भी प्रशासकीय व प्रबंधक पदों पर उनका अनुपात काफ़ी कम है। लैंगिक समानता के प्रति शिक्षिकाओं के व्यवहार व दृष्टिकोण का अध्ययन व इस पर किए गए शोध न के बराबर हैं।

इस अभाव के कारण जहाँ लैंगिक समानता पर शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाना संभव व आसान हो जाता है वहीं शिक्षिकाओं का प्रशिक्षण इतना आसान और संभव नहीं हो पाता। बल्कि इस ओर ध्यान भी नहीं जाता। शिक्षक एक व्यक्ति है यह बात सही है। लेकिन पहले वह एक पुरुष या स्त्री भी है इस बात को

ध्यान में रखा जाए तो इस दिशा में सही सफ़लता प्राप्त की जा सकती है। क्योंकि लैंगिक समानता के पक्षधर भी यह बात कहते हैं कि विद्यालय में छात्रों को सिर्फ़ यह ही नहीं सिखाया जाना चाहिए कि महिला और पुरुष अलग नहीं हैं वरन् यह भी बताया जाना चाहिए कि वे अलग ज़रूर हैं लेकिन बराबर हैं यही सीख वास्तविक लैंगिक समानता को प्राप्त करा सकती है।

अब हम देखें कि किस तरह शिक्षकों पर लैंगिक समानता को लेकर अध्ययन किए गए हैं। कहा जाता है कि —

- कुछ शिक्षक छात्राओं को कम अर्थपूर्ण व सघन प्रशंसा देते हैं जबकि लड़कों का काम हमेशा उत्कृष्ट बताया जाता है।
- छात्रों की तुलना में छात्राओं के काम को कमतर आँका जाता है।
- छात्रों पर छात्राओं की तुलना में ज़्यादा ध्यान देते हैं।
- छात्रों से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर के लिए छात्राओं की तुलना में देर तक इंतज़ार करते हैं।
- छात्रों से आँख मिलाकर बात करते हैं, छात्राओं से नहीं।
- छात्रों के नाम ज़्यादा याद रखते हैं।
- छात्रों को उनके नामों से बुलाते हैं।
- कक्षा में पाठ-चर्चा के दौरान केवल छात्रों के कमेंट्स का ही उल्लेख करते हैं।
- छात्राओं को उनकी बात पूरी होने से पहले ही रोक देते हैं।
- छात्रों से ऐसे प्रश्न पूछते हैं जो उच्च दर्ज़े की विचार क्षमता की माँग करते हैं जो केवल तथ्यों को पेश करने पर आधारित नहीं होते।

इस तरह जब शिक्षकों के कक्षा में व्यवहार को रेखांकित कर लिया जाता है तो उनके प्रशिक्षण के बिंदुओं पर विचार कर लैंगिक समानता के लिए उन्हें तैयार करने में भी आसानी हो जाती है। शिक्षिकाओं पर ऐसे अध्ययन कम ही हैं, अतः उनके प्रशिक्षण पर इस दिशा में काम नहीं हो पाता।

इस आधार पर शिक्षकों को लैंगिक समानता के लिए उन बिंदुओं पर प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे वे लिंग भेद आधारित अपने व्यवहार को समझ सकें और पाठ्यक्रम में मौजूद लैंगिक भेदभाव का प्रतिकार कर सकें। जैसे वे पाठ जिनमें लड़कों को या पुरुषों को उत्साहपूर्ण, बहादुर, आविष्कारी प्रवृत्ति का और ताकतवर बताया जाता है जबकि लड़कियों को शांत, निष्क्रिय और अदृश्य-सा बताया जाता है। शिक्षक को अपनी स्वयं की और पाठ्यक्रम की इस प्रवृत्ति पर काम करना चाहिए। इस तरह शिक्षक पाठ्यक्रम में मौजूद लिंग भेद को पहचान सकेंगे।

उन्हें यह भी बताया जाता है कि पुरुष-शिक्षक छात्रों के लिए एक आदर्श बन सकते हैं। वे छात्रों को बता सकते हैं कि वे सीखने के बारे में कितने उत्साहपूर्ण हैं, उसका महत्त्व जानते हैं और कई तरह से अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं। उन्हें यह भी बताया जाता है कि छात्र, शिक्षक को पूरी तरह सख्त नहीं पाते हैं और वे अपनी जगह तलाशना चाहते हैं। उन्हें ऐसे शिक्षक पसंद हैं जो कठोर तो हों पर साफ़-सुथरा व्यवहार करते हों। छात्र मानते हैं कि शिक्षक उन्हें ज़्यादा दबाब में नहीं रखते। उन्हें बताया जाता है कि यदि छात्र सुरक्षित महसूस करते हैं तो वे चुनौतियों से सकारात्मक ढंग से निपट सकते हैं। जैसे

छात्र को यह कहना कि– ***क्या तुम यह कर सकते हो? क्या तुम इसके लिए तैयार हो?*** यह उन्हें चुनौती लेने को प्रेरित करता है। छात्र लक्ष्य के प्रति अधिक केंद्रित होते हैं, वे लक्ष्य जो छोटे, मापन योग्य, प्राप्त करने योग्य, यथार्थपूर्ण और समयबद्ध होते हैं। छात्र उन भौतिक और शैक्षिक गतिविधियों का आनंद लेते हैं जो सक्रिय योगदान और शारीरिक क्रियाओं पर आधारित होती हैं। अतः शिक्षक को कम से कम बोलना चाहिए। छात्र देर तक शांत नहीं बैठे रह सकते इसके लिए उन्हें काफ़ी प्रेरणा की आवश्यकता होती है। छात्र करते पहले हैं और सोचते बाद में हैं जबकि छात्राएँ पहले सोचती हैं फिर काम करती हैं। यह छिपे पाठ्यक्रम (Hidden Curriculum) की अवधारणा पर आधारित है। जिसमें बताया गया है कि शिक्षक छात्रों को इस तरह पढ़ाते और शिक्षा देते हैं कि यह न केवल जातीय और सामाजिक वर्ग की धारणा को मजबूत करता है वरन् लैंगिक संबंधों को भी मज़बूत करता है। शिक्षक का केवल छात्रों पर ध्यान देना और उन्हें ही अपनी बात रखने को प्रेरित करना छात्रों पर यह असर करता है कि वे ज़्यादा सामाजिक हो जाते हैं पर छात्राएँ इससे प्रायः शांत हो जाती हैं और वे यह समझने लगती हैं कि वे अपने साथ के छात्रों से अलग और कमतर हैं। शिक्षक को शिक्षण में इन बातों का ध्यान रखने को कहा जाना चाहिए।

शिक्षिका के प्राकृतिक स्त्री गुणों का लैंगिक समानता में प्रयोग

आई.ए.ई.ई.ए. (International Association for Evaluation of Educational Achievement) द्वारा 14 देशों में किए गए अध्ययनों में यह पाया गया है कि लैंगिक अवधारणा प्रदर्शन को बहुत प्रभावित करती है। अतः यह ज़रूरी हो जाता है कि इस कमज़ोरी को ही एक अस्त्र के रूप में काम में लिया जाए।

इस दिशा में किए गए कई अध्ययनों में स्त्री-पुरुष के मध्य नैसर्गिक रूप से विद्यमान विभिन्नताओं को ध्यान में लाना ज़रूरी है। जैसे कि सबसे बड़ा फ़र्क स्त्री-पुरुष के मस्तिष्क की संरचना में ही है। स्त्रियों के मस्तिष्क का बायाँ भाग ज़्यादा लाभकारी होता है जो पढ़ने-लिखने और बोलने ज़्यादा कारगर है, जबकि उनका दायाँ भाग उन्हें सहानुभूतिपूर्वक व अच्छी तरह से स्वयं की और दूसरों की भावनाओं को समझने में सहायता करता है। इस तरह उनके मस्तिष्क के दोनों भाग आवश्यक शैक्षिक गतिविधियों में सहायता करते हैं।

यह प्राकृतिक तथ्य स्त्री को शिक्षक के रूप में आदर्श प्रत्याशी बनाता है। वे इस व्यवसाय के लिए पुरुषों की तुलना में ज़्यादा अनुकूल साबित होती हैं। शिक्षिकाओं द्वारा छात्राओं पर ज़्यादा ध्यान देना क्योंकि वे शांत और लड़कों की तुलना में कम चाहने वाली होती हैं, से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस धारणा के चलते वे छात्राओं को कक्षा में ज़्यादा सक्रिय और सहभागी बनने के लिए प्रेरित कर सकती हैं।

लेकिन दिक्कत यह है कि शिक्षकों को जो प्रशिक्षण दिया जाता है वह इस तरह बनाया गया होता है कि इसमें शिक्षक-शिक्षिका की लैंगिक असमानता का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। स्त्री के अनुभव, अपेक्षाओं, दृष्टिकोण, प्राथमिकताओं का

इसमें ध्यान नहीं रखा जाता। यह 'विकास में महिलाएँ' (Women in Development) की अवधारणा पर आधारित है जबकि उसे 'महिलाएँ और विकास' (Women and Development) की अवधारणा पर आधारित होना चाहिए जिसमें प्रशिक्षण कार्यक्रम नैसर्गिक लैंगिक असमानता को ध्यान में रखता है। स्त्री और पुरुष की अलग-अलग आवश्यकताओं को ध्यान में रखता है और लैंगिक असमानता को खुले तौर पर संबोधित करता है।

अतः शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री-केंद्रित व्यवसायिक विकास की निम्न रणनीतियाँ तय की जानी चाहिए—

1. यह तय किया जाना चाहिए कि शिक्षण में विकास के सभी अवसर उन्हें समान रूप से उपलब्ध हों और उन्हें उनके बच्चों की देखभाल करने के लिए सुविधाएँ, आवागमन के साधन, और प्रशिक्षण के लिए स्त्री प्रशिक्षक उपलब्ध हों।
2. प्रशिक्षण की सारी सामग्री शिक्षिकाओं की प्राथमिकताओं और मुद्दों से संबंधित होनी चाहिए, जैसा कि राजस्थान के 'महिला प्रशिक्षण केंद्र' द्वारा किया जाता है।
3. शिक्षिकाओं का स्थानीय संगठन तैयार करना– इन संगठनों में शिक्षिकाएँ नियमित रूप से मिलती रह सकती हैं और एक-दूसरे की मदद कर सकती हैं। राजस्थान के "लोकजुम्बिश" कार्यक्रम के तहत "अध्यापिका मंच" इसके सबसे अच्छे उदाहरण हैं। इससे उन्हें अपने अलगाव से सामंजस्य बिठाने, एक साथ आने और व्यवसायिक विकास के अवसर उपलब्ध होते हैं।
4. नई शिक्षिकाओं के निरंतर प्रशिक्षण के लिए उन्हें शिक्षा के क्षेत्र की किसी बड़ी महिला हस्ती को आदर्श बनाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए ताकि वे अपने विद्यालयों में सहयोग और विकास कर सकें।
5. शिक्षा संबंधी नीति-निर्धारण में शिक्षिकाओं की भूमिका सुनिश्चित की जानी चाहिए ताकि वे सारी प्रशासनिक गतिविधियों में भी भागीदार हों।

विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों – प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर लैंगिक संतुलन पर ध्यान देना तथा सभी विषयों में भी यह संतुलन हों, इसका पालन किया जाना चाहिए।

इस प्रकार शिक्षिकाओं का इस क्षेत्र में योगदान रेखांकित करते हुए उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में सकारात्मक योगदान देने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

उपसंहार

लैंगिक समानता का मतलब यह नहीं होना चाहिए कि स्त्री और पुरुष एकसमान हो जाएँ बल्कि यह होना चाहिए कि विकास के अवसर उसके स्त्री या पुरुष होने पर आधारित न हों। शिक्षा इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसके लिए शिक्षिकाओं को अपनी प्राकृतिक और नैसर्गिक क्षमताओं का बेहतर उपयोग करने पर ज़ोर देना होगा। उन्हें यह देखना होगा कि पुरुष-शिक्षक उनका प्रतिद्वंद्वी या आदर्श न हो बल्कि एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा उनके बीच हो। वे उनके पुरुष होने पर ज़ोर न देकर अपने स्त्री होने के गर्व को महसूस करें। ऐसा करके वे न केवल छात्राओं

के लिए एक आदर्श स्थापित करेंगी बल्कि छात्रों को भी अपनी सहपाठी छात्राओं के प्रति संवेदनशील और स्वस्थ प्रतिस्पर्धी बनने के लिए प्रेरित कर सकेंगी। वे एक वास्तविक शिक्षक होंगी जोकि सिर्फ़ शिक्षित ही नहीं करता वरन् प्रेरित भी करता है। नीति-निर्माताओं को भी इस ओर प्रयास करना होगा।

ग्रंथ सूची

एन.सी.ई.आर.टी. 2015. एनसीएफ़ 2005. नेशनल फ़ोकस ग्रुप पोजीशन पेपर *जेंडर इश्यूज़ इन एजुकेशन*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

चैपमैन, एमंड. 1994. *जेंडर विसाज़ इन एजुकेशन*. डी'यूविल कॉलेज, कनाडा.

यूनाटेड नेशंस. 2014.'एजुकेशन एज़ द पाथवे टुवर्ड्स जेंडर इक्वलिटी'. *यू.एन. क्रॉनिकल*. यूनाइटेड नेशंस की पत्रिका.

यूनेस्को. 2012. *ए गाइड फ़ॉर जेंडर इक्वलिटी इन टीचर एजुकेशन,* फ्रांस.

रामचंद्रन, विमला. 2015. *जेंडर इश्यूज़ फ्रेमिंग द टीचिंग फ़ोर्स*. न्यूपा, नयी दिल्ली.

3

कक्षा में बोल कर पढ़ने से समझने तक

सावन कुमारी*

सर्वप्रथम लेख के शीर्षक की सीमाएँ और विस्तार उल्लेखनीय हैं। पठन-कार्य तो हर विषय की कक्षाओं में सामान्यत: होता ही है, पर इस लेख में सीमा है – भाषा की कक्षाओं में। इस लेख में 'पढ़ना' शब्द का इस्तेमाल किया गया है, जिसका अर्थ 'Reading' से है। इसको लिखने का उद्देश्य 'बोल कर पढ़ने' की प्रक्रिया को समझने से है। मेरे द्वारा सरकारी विद्यालयों में किए गए अनुभवों, कुछ शिक्षक और छात्रों के साथ बातचीत के आधार पर इस लेख को लिखा गया है। इस लेख की रूपरेखा कुछ इस तरह से है। सबसे पहले, 'पढ़ने का मतलब समझना है' हम इस बारे में संक्षेप में चर्चा करेंगे। फिर, छात्रों द्वारा कक्षा में बोल कर पढ़ने की प्रक्रिया को एवं शिक्षक-छात्रों के विचार और भूमिका का अवलोकन करेंगे। अंत में कुछ बातों पर विचार करते हुए हम निष्कर्ष पर पहुँचेगे।

पढ़ना सीखना-सिखाना, यह कक्षा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। पढ़ना (reading) सीखने की शुरुआत प्राथमिक कक्षाओं से ही की जाती है। यह एक मानी हुई बात है कि इस कौशल का विकास ज़रूरी है। विडंबना यह है कि दस से बारह शैक्षणिक वर्षों के बाद भी (कुछ) बच्चे इस कौशल में पारंगत नहीं हो पाते इसलिए इस विषय पर विमर्श की आवश्यकता है।

मूलतः हम पढ़ते हैं, जानकारी हासिल करने के लिए। पठन कौशल के प्रयोग की आवश्यकता हमारे दैनिक जीवन में अधिकतर स्थान और समय पर होती है। इस कौशल के प्रयोग के अवसर अनेक हैं, उदाहरण – हर गली, मोहल्ले, बाज़ार में परिचयात्मक नाम, शब्द, नंबर, आदि लिखित होते हैं, जिन्हें पढ़कर समझने की ज़रूरत पड़ती है। विभिन्न उपयोगी सामानों के पैकेटों पर सूचनाओं की भरमार होती है; उसके प्रयोग से संबंधित ज़रूरी निर्देशिका छपी होती है। प्रयोग से पहले सावधानियों के 'टिप्स' तथा प्रयोग के तरीके समझने आवश्यक होते हैं। कुल मिलाकर पठन-कौशल की आवश्यकता पड़ती ही है।

पढ़ने का सीधा संबंध समझने से है, इस बात में कोई दो मत नहीं हैं। किसी को एक पुस्तक देते हुए अगर हम यह कहते हैं कि इसको पढ़ो। तो इसका तात्पर्य यह कहना है कि 'इसको पढ़ो और समझो' ना कि 'इसको पढ़ो और मत समझो'। पढ़ना और समझना दोनों एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। दूसरे शब्दों में, समझना ही पढ़ना है (स्मिथ, 1983)।

* *शोधार्थी,* शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

किसी भी लिखित (पाठ) को समझने के लिए हम अपने अनुभवों का इस्तेमाल करते हैं। परंतु, जब कक्षा की बात आती है तो पढ़ने की पूरी प्रक्रिया का रूप और उद्देश्य बदल जाता है। यह मुद्दा विचारणीय है कि पढ़ने का उद्देश्य क्या है और इस उद्देश्य को कौन तय करता है।

कक्षा में बच्चों द्वारा बोलकर पढ़ना

कक्षा में बच्चों द्वारा बोलकर पढ़ना – यह एक बहुप्रचलित अभ्यास है, जो कि भाषा की कक्षाओं का एक अहम हिस्सा होता है। किसी भी कक्षा के निर्धारित समय का एक प्रमुख भाग इस गतिविधि में लगाया जाता है। इसमें एक बच्चा बोलकर पढ़ता है और बाकी के बच्चे पाठ सुनते और देखते हैं। छात्र द्वारा बोले हुए शब्द और उसके लिखित स्वरूप (जो इस पाठ में हैं) – इन दोनों को बाकी के बच्चे मिलाते है, ऐसी अवधारणा है। इस गतिविधि का अभ्यास कई तरीकों से किया जाता है। हम इसके कुछ बिंदुओं पर बात करेंगे।

शिक्षकों के विचार

कई शिक्षकों का मानना है कि यह एक बहुत ही उपयोगी तरीका है। पढ़ना सिखाने के लिए इसका इस्तेमाल बहुत समय से चला आ रहा है। इसमें छात्रों को मौका मिलता है अभ्यास करने का। वह सुनकर, पढ़कर व देखकर पढ़ना सीखते हैं। इसके साथ ही, यह प्रक्रिया कक्षा में अनुशासन बनाये रखने में भी मदद करती है। इस प्रक्रिया के दौरान बच्चे शांत होकर बैठते हैं, क्योंकि उन्हें पता है अगर वे बातचीत करेंगे तो उन्हें पढ़ने के लिए कहा जा सकता है जिससे वे बचना चाहते हैं। एक कक्षा में सभी बच्चे एक समान नहीं होते। कुछ सक्षम पाठक हैं तो कुछ कम सक्षम पाठक भी हैं। कम सक्षम पाठकों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

शिक्षकों की भूमिका

इस पूरी प्रक्रिया में शिक्षक कुछ अहम बातों पर ध्यान रखते हैं। इन बातों में सबसे महत्वपूर्ण है—शब्दों का उच्चारण और विराम-चिन्हों का इस्तेमाल। इसके अलावा पढ़ने का तरीका, आवाज़ का उतार-चढ़ाव और आत्मविश्वास भी धीरे-धीरे विकसित करने पर ज़ोर होता है। ज़्यादातर, शिक्षक बच्चों के उच्चारण को ठीक भी करते जाते हैं और यदि बच्चा किसी शब्द पर अटके तो शब्द भी बता देते हैं। बच्चा जब पाठ का एक हिस्सा पढ़ लेता है तब शिक्षक उसका मतलब समझाते हैं। उसके बाद दूसरा बच्चा पाठ के आगे का हिस्सा पढ़ता है। यह पढ़ने और समझाने की प्रक्रिया चलती रहती है।

बच्चों की भूमिका

इस गतिविधि के लिए बच्चों का चुनाव करना मुख्यतः शिक्षक पर निर्भर करता है। इसके कुछ मुख्य तरीके हैं, जैसे– सक्षम पाठकों का चुनाव, एक पंक्ति (कक्षा के किसी भी तरफ से) से बच्चों का चुनाव और किसी भी बच्चे का नाम लेकर। इस बात का अंदाजा हर बच्चा लगा लेता है कि कक्षा में आगे बैठे बच्चों की बारी पहले आने की संभावना अधिक है। इसलिए, कम सक्षम पाठक कक्षा में पीछे बैठना पसंद करते हैं। उनको पढ़ने के लिए ना बोल दिया जाए, इस डर से वे अपना सिर नीचे झुकाए रखते हैं। इसके बावजूद

भी जिस बच्चे की बारी आने की उम्मीद होती है वह अंदाजा लगा, पाठ के उस हिस्से को पढ़ने की कोशिश करता रहता है। बच्चों पर इस प्रक्रिया का दवाब उनमें व्यग्रता उत्पन्न करता है। एक शिक्षक के अनुसार, सक्षम पाठक, हमेशा पढ़ने को लेकर उत्साहित रहता है, मनोबल भी बढ़ता रहता है। इसके विपरीत कम सक्षम पाठक हमेशा इस प्रक्रिया से बचने की कोशिश करता रहता है। कई कक्षाओं के अवलोकन में यह भी पाया गया है कि कई बच्चे इस गतिविधि के दौरान पढ़े जा रहे भाग को अपनी पाठ्यपुस्तक में ढूँढ़ते रहते हैं।

विचारणीय बिंदु

बच्चों की सहभागिता — सक्रिय या निष्क्रिय

इस प्रक्रिया में एक कक्षा की निर्धारित समय सीमा के दौरान तीन से चार बच्चों को ही बोल कर पढ़ने का अवसर प्राप्त हो पाता है। अन्य बच्चे इस प्रक्रिया में सम्मिलित हैं इस बात की अपेक्षा रखी जाती है। परंतु इस बात की पुष्टि ज़्यादातर नहीं होती। अब अगर हम कम सक्षम बच्चों पर विशेष ध्यान देने की बात पर विचार करें तो इस पूरी प्रक्रिया में उनसे बोल कर पढ़ने की अपेक्षा न के बराबर होती है, क्योंकि अगर कम सक्षम बच्चे कक्षा में बोलकर पढ़ेंगे तो इस प्रक्रिया में ज़्यादा वक्त लगेगा और कक्षा जो कि प्रायः तीस से चालीस मिनट की होती है, उसमें इतना कर पाने की संभावना नहीं होती।

पढ़ना — अर्थ के साथ

बच्चे जब बोल कर पढ़ते हैं तो उनका ध्यान शब्दों के उच्चारण पर और विराम-चिन्हों के प्रयोगों पर होता है। एक बच्चे के अनुसार, अच्छा पढ़ने का मतलब है बिना किसी शब्द पर अटके, विराम-चिन्हों पर रुकते हुए पढ़ना यानी अल्पविराम पर थोड़ा रुकना और पूर्ण विराम पर ज़्यादा। छात्र का पूरा ध्यान उच्चारण पर होना और शिक्षक का इसके बाद पढ़े हुए हिस्से का अर्थ बतलाना – *यह इस बात का संकेत है कि बच्चे से बोलकर पढ़ने के साथ अर्थ ग्रहण करने की अपेक्षा नहीं की जा रही। बल्कि, अर्थ बताने की पूरी ज़िम्मेदारी शिक्षक पर होती है*। समझते हुए पढ़ने का कोई प्रमाण कक्षा में प्रत्यक्ष रूप से नज़र नहीं आता। एक बच्चे के अनुसार, हम पढ़ते हैं, फिर सर (शिक्षक) समझाते हैं। सर (शिक्षक) अच्छे से समझाते हैं तो समझ में आ जाता है। इससे यह पता चलता है कि बच्चों के पास अपनी कोई रणनीति नहीं होती, अर्थ ग्रहण करने के लिए।

ग्रंथ सूची

सिन्हा, एस. 2012. *रीडिंग विदाउट मीनिंग – द डिलेमा ऑफ़ इंडियन क्लासरूम्स, लैंग्वेज एंड लैंग्वेज टीचिंग*. वॉल्यूम 1. अजीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन एंड विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर. 22–26.

स्मिथ, एफ़. 1983. *एसेज़ इंटू लिटरेसी – सलेक्टेड पेपर्स एंड सम आफ़्टरथॉट्स*. हाइनमैन एजुकेशनल बुक्स, ऑकलैंड.

4

गिजुभाई बधेका की शिक्षण पद्धतियाँ प्राथमिक शिक्षा के विशेष संदर्भ में

त्रिभुवन मिश्रा*
सीमा सिंह**

गिजुभाई के शिक्षण चिंतन का मेरूदंड उनके द्वारा स्वीकृत शिक्षण पद्धतियाँ हैं। गिजुभाई ने शिक्षण पद्धतियों के संदर्भ में अपने विचारों और प्रयोगों को *प्राथमिक विद्यालय शिक्षक और शिक्षण पद्धतियाँ* नामक पुस्तक में क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया है। शिक्षा के किसी भी स्तर पर शिक्षण पद्धतियों का विशेष महत्त्व होता है। उपयोगी शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग करके कम क्षमतावान शिक्षक भी विद्यार्थियों के सफलतापूर्वक शिक्षित एवं उनकी पढ़ने में रुचि जागृत कर सकते हैं। गिजुभाई ने शिक्षण द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली पारस्परिक व्यवस्था (पठन-पाठन) को छोटे बच्चों के लिए अनुपयुक्त पाया था। उनका मानना था कि हम एक ही पद्धति द्वारा विविध विषयों की जानकारी बच्चों को नहीं दे सकेंगे। हमें विषय की प्रकृति व बच्चों की रुचि के अनुरूप शिक्षण पद्धतियाँ प्रयुक्त करनी होंगी।

बच्चों को बगैर कोई यातना-प्रताड़ना दिए प्यार-दुलार के साथ पढ़ने-लिखने के लिए उन्होंने बाल-शिक्षण के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए। अपनी मेहनत, लगन, निष्ठा, निरंतर जागरूकता तथा एकाग्रता के फलस्वरूप वे बच्चों के लिए शिक्षण का एक ऐसा संसार रचने में सफल हो सके जिसे सच्चे अर्थों में खुशियों का संसार कह सकते हैं, एक ऐसा संसार जहाँ दुख, कष्ट, यातना, गाली-गलौच, अपमान, डाँट-फ़टकार, कोसना, पिटाई और प्रताड़ना जैसी चीज़ों के लिए कोई जगह न थी।

गिजुभाई का मानना था कि बालक तो स्वयं सीखते हैं, इनके लिए शिक्षक को ऐसे उपकरणों एवं सामग्रियों का प्रयोग कर ऐसा वातावरण उपस्थित करना चाहिए जिससे विद्यार्थी सीखने में आनंद एवं उल्लास का अनुभव करें। इस प्रकार विद्यार्थी अधिक से अधिक सीख सकेंगे तथा उनकी कल्पना एवं सृजनात्मक शक्तियों का भी विकास हो सकेगा।

प्राथमिक शिक्षा किसी भी व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण होती है। प्राथमिक शिक्षा के ठीक प्रकार से पूर्ण होने पर ही बालक का भविष्य निर्भर करता है।

* *शोधार्थी,* शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** *प्रोफ़ेसर,* शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गिजुभाई का मानना था कि बेहतर प्राथमिक शिक्षा के लिए अध्यापक को रुचिकर एवं मनोरंजक शिक्षण विधियों का ज्ञान नितांत आवश्यक है।

विद्यार्थियों को शिक्षा देने हेतु आवश्यक है कि शिक्षक अपनी आँखें और कान खुले रखकर और इससे भी अधिक अपना मस्तिष्क खुला रखकर अपने शिक्षण के लिए कोई पहल निश्चित करे। गिजुभाई ने उस समय आज से लगभग 80 वर्ष पूर्व जबकि शिक्षण पद्धतियों पर कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी, उन्होंने अपने शैक्षिक चिंतन और प्रयोगों द्वारा लिखी गई पुस्तक में विभिन्न शिक्षण पद्धतियों की चर्चा की जिनका वर्णन इस प्रकार है –

1. व्याख्यान पद्धति

गिजुभाई व्याख्यान पद्धति को उपदेशात्मक पद्धति मानते थे और बाल शिक्षण के लिए इसे अनुपयुक्त मानते थे। उनके मतानुसार इस पद्धति में बालक को सोचने के लिए, करने के लिए कुछ भी नहीं होता। इस पद्धति में केवल एक ही इंद्रिय–श्रवणेंद्रिय का ही प्रयोग होता है जिससे दूसरी इंद्रियों का विकास रुक जाता है और बालकों की स्मरण शक्ति पर अत्यधिक बोझ आ जाता है। उनके मतानुसार इस पद्धति में "विद्यार्थी को अनुभव और प्रयोग द्वारा सीखने का कोई अवसर नहीं मिलता, अत: उसका ज्ञान तोते जैसा ऊपरी ज्ञान होता है" (बधेका, 2012, पृ. 21)।

गिजुभाई का तर्क था कि "ज्ञान प्राप्ति की जिस पद्धति से बुद्धि का विकास रुकता हो, वह पद्धति थोड़े ही समय में ज्ञान की सारी विरासत सौंप देने की शक्ति रखती भी हो तो उससे लाभ क्या?" (बधेका, 2012, पृ. 22)। उन्होंने व्याख्यान पद्धति के मुख्य रूप से दो दोष बताए हैं – (1) इससे खुद काम करने की और अनुभव प्राप्त करने की विद्यार्थी की रुचि नहीं बन पाती है। (2) विद्यार्थी को सभी मामलों में दूसरों के निर्णय स्वीकार करने पड़ते हैं, इसलिए इसमें बुद्धि के विकास के लिए कम अवसर मिलते हैं।

व्याख्यान पद्धति का गिजुभाई विरोध तो करते थे लेकिन उसे पूर्णत: अस्वीकार नहीं करते। वे मानते थे कि कुछ विद्यार्थियों के लिए और कुछ परिस्थितियों में यह पद्धति कुछ हद तक उपकारक भी है। महाविद्यालयों के लिए इस पद्धति को वे हानिकारक नहीं मानते। वह मानते थे कि विवेकशील अध्यापक विवेकपूर्ण ढंग से और थोड़ी मर्यादापूर्वक दूसरी पद्धति के साथ इसका उपयोग कर सकता है।

2. प्रश्नोत्तर पद्धति

गिजुभाई के मतानुसार प्रश्नोत्तर पद्धति व्याख्यान की तुलना में ऊँचे दर्जे की पद्धति है। जो दोष व्याख्या पद्धति में हैं वे दोष इस पद्धति में नही हैं। प्रश्न का उत्तर देते समय छात्र को स्वयं सक्रिय बनना पड़ता है, फलस्वरूप उसमें क्रिया करने की शक्ति प्रकट होती है। यह विधि अध्यापकों के लिए थोड़ी कठिन अवश्य है क्योंकि इसके लिए उन्हें ज्ञानी होना आवश्यक है। क्योंकि इसमें बालकों से प्रश्न पूछ-पूछकर उन्हें ज्ञान के रास्ते में चढ़ाना होता है और बालकों के प्रश्नों के ऐसे उत्तर देने होते हैं जो बालक के विकास का पोषण करने वाले हों। इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षक को प्रश्न पूछने और प्रश्नों का उत्तर देने की कला का सुंदर ज्ञान हो। इसमें बच्चा ज्ञात से अज्ञात की ओर

जाता है। प्रश्न कैसे हों इस पर भी निम्नलिखित चर्चा करते हैं और कहते हैं कि प्रश्न का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि उसके उत्तर में से दूसरा प्रश्न सहज ही प्रकट हो। विद्यार्थी की स्मरण शक्ति को सहायता पहुँचाने अथवा उत्तेजित करने वाली सामग्री विद्यार्थी को सुलभ हो तो अच्छा प्रश्न का उत्तर गलत आये तो उसको गलत कहने के बदले कुछ दूसरे प्रश्न पूछकर प्रश्नों के उत्तर अथवा किसी दूसरे व्यक्ति से पूछकर उत्तर की गलती समझा देनी चाहिए। प्रश्न ऐसा होना चाहिए कि उसका एक ही उत्तर निकले। संदिग्ध एवं दो उत्तरों वाले प्रश्न पूछने योग्य नहीं होते। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यदि प्रश्न भाषायी त्रुटि के कारण बालक न समझ सका हो तो प्रश्न को दोहरा देना चाहिए।

गिजुभाई इस बात में एकदम स्पष्ट थे कि प्रश्नोत्तर पद्धति के बहुत अच्छा होते हुए भी इस पद्धति के द्वारा सभी चीज़ों का शिक्षण संभव नहीं है। "यह मानना कि प्रश्नोत्तर पद्धति में हर छोटी-बड़ी बात को प्रश्न द्वारा निकलवाकर ही आगे बढ़ा जा सकता है, एक भ्रम है और मूर्खता भी है" (बधेका, 2012,पृ. 26)।

3. जोड़ीदार पद्धति

गिजुभाई के समय में बड़ी उम्र के बालकों में व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देने को प्रधानता दी जाने लगी और उसका प्रयोग बेल्जियम व इंग्लैंड में सफलतापूर्वक चल रहा था। इस पद्धति का एक महत्वपूर्ण हेतु यह है कि इसमें विद्यार्थी न केवल स्वयं अपना गुरु बन सकता है बल्कि वह दूसरों का भी गुरु बन सकता है। इसमें सामूहिक शिक्षा से कम समय लगता है। गिजुभाई के मतानुसार यह पद्धति उत्तम से उत्तम विद्यार्थी से लेकर ठेठ से ठेठ विद्यार्थी तक सबको अपने-अपने सामर्थ्यानुसार सीखने का उत्साह और शक्ति देती थी।

जोड़ीदार पद्धति में विद्यार्थियों की दो-दो की जोड़ी बनाते हैं। जोड़ियों में बटे ये विद्यार्थी आपस में एक-दूसरे को सिखाते-पढ़ाते हैं। इन जोड़ीदारों में एक-दूसरे से कुछ बढ़कर होता है। विद्यार्थियों के निकट पाठ्यपुस्तकें व अन्य साधन, जिनसे वह सीख सकता है, उपलब्ध रहते हैं। एक जोड़ीदार अपनी पसंद का विषय या पुस्तक पढ़कर समझता है और अपनी कठिनाइयों की दूसरे जोड़ीदार से चर्चा करता है। यदि वह न समझा सके तो अन्य विद्यार्थी और अंत में शिक्षक से अपनी समस्या का समाधान करा लेता है किंतु जब विद्यार्थी आपस में सोचते हैं तो उनसे कुछ भूलें होना स्वाभाविक है। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक खास तौर पर गतिशील रहे और सारी कक्षा में घूमता रहे और जो भूलें हो रही हैं उनको सुधारता रहे।

इस पद्धति में "शिक्षक को बहुत सावधान रहना होता है। जब इस पद्धति के अनुसार काम शुरू होता है तो अकसर शिक्षक के सामने पूरी कक्षा के विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर करने का काम एक साथ आ खड़ा होता है" (बधेका, 2012, पृ. 26)।

4. नाट्यप्रयोग पद्धति

मनुष्य की अनुकरण की सहजवृत्ति होती है जो बचपन में सर्वाधिक होती है। बालक अपने आस-पास दिन-रात जो घटनाएँ घटती रहती हैं, उनका अभिनय अपने छोटे-छोटे खेलों के रूप में करते रहते हैं। बालकों के अनुकरणशील स्वभाव से उत्पन्न होने वाले ये

सब खेल अनेक छोटे-छोटे नाट्यप्रयोग ही होते हैं। गिजुभाई की पैनी दृष्टि ने इसे देखा और इसका प्रयोग बाल शिक्षण के लिए कर लिया। बालक घटित घटनाओं का अथवा दूर के दृश्यों का अभिनय करते हुए अपनी कल्पना शक्ति और सृजन शक्ति का पोषण कर उन्हें सुदृढ़ और तीव्र बनाते हैं। अपने इस अभिनय द्वारा वे काल्पनिक ज्ञान के सहारे वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और विद्यालय में पढ़े बिना भी अपने आपको शिक्षित कर लेते हैं।

5. संयोगीकरण और पृथक्करण पद्धतियाँ

"संयोगीकरण पद्धति का मतलब यह है कि वस्तु अथवा विषय को पहले उसकी इकाई से अलग करके सिखाने के बाद समूची वस्तु का अथवा विषय का पूरा ज्ञान करा देना। पृथक्करण पद्धति इससे बिल्कुल उल्टी है। पृथक्करण पद्धति का अर्थ यह है कि पहले वस्तु अथवा विषय का पूरा ज्ञान कराने अथवा उसको पूरी तरह सिखा देने के बाद पृथक्करण के द्वारा उसके अंगों-उपांगों को अलग-अलग दिखाकर उस विषय का ज्ञान करा देना" (बधेका, 2012, पृ. 27)।

भाषा सिखाने के संदर्भ में गिजुभाई ने इस विधि के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात लिखी है –

"अंग्रेज़ी भाषा में भाषा सिखाने का काम संयोगीकरण की अपेक्षा पृथक्करण पद्धति से शुरू करने की हिमायत बढ़ रही है। कारण यह है कि संयोगीकरण पद्धति से शब्द सिखाने पर अंग्रेज़ी भाषा के उच्चारणों की विचित्रता कठिनाई खड़ी कर देती है। चूँकि अंग्रेज़ी भाषा के उच्चारण का अनुसरण नहीं करती, इस कारण उसके शब्दों के हिज्जों में और उच्चारण में अंतर उत्पन्न हो जाता है। इसलिए उनको पृथक्करण पद्धति सुलभ मालूम हुई किंतु भारत में अक्षर सिखाने के लिए पृथक्करण पद्धति को अपनाना अंधानुकरण करने के समान है। हमारी भाषा उच्चारण का अनुसरण करती है इसलिए हमें तो मूलाक्षर संयोगीकरण पद्धति से ही सिखाने चाहिए। इसके समर्थन में डॉ० मांटेसरी की अक्षर सिखाने की पद्धति हमारे सामने है। इटालियन भाषा उच्चारणानुसारी है, वह ध्वनि का अनुसरण करती है इसलिए इटली में भी भाषा संयोगीकरण पद्धति से सिखाई जाती है" (बधेका, 2012, पृ. 29)।

6. त्रिपद पद्धति

सेगुइन पद्धति का ही यह हिंदी नामकरण है। सेगुइन ने बालक के व्यवहार को गंभीरतापूर्वक अवलोकन करने के बाद समझा कि बालक अपनी इंद्रियों और मन द्वारा वस्तु को देखते हैं और फिर बड़ों से नाम पूछकर अपनी बुद्धि में धारण करते हैं। इस प्रकार वे इंद्रियगम्य अनुभवों को संज्ञा के साथ जोड़कर बुद्धि के पटल पर अंकित करते हैं। संज्ञा सही है या नहीं इसको पूछकर वे अपना ज्ञान दृढ़ करते हैं। बालकों की स्वयं शिक्षा की रीति को सेगुइन ने तीन पदों में बाँटकर शिक्षा के क्षेत्र में लागू किया था। अतः इसे त्रिपद विधि कहते हैं।

जैसे बालक को नीले व लाल रंग का ज्ञान कराने के लिए तीन पद होंगे—

(क) यह रंग लाल है, यह रंग नीला है।

(ख) लाल रंग दिखाओ, नीला रंग दिखाओ।

(ग) यह रंग कौन सा है?

गिजुभाई ने इस पद्धति के विषय में लिखा है—"सेगुइन ने बड़ी चतुराई के साथ बालक की स्वयं सीखने की रीति से त्रिपद पद्धति के रूप में शिक्षा की एक सुंदर पद्धति खड़ी कर ली है" (बधेका, 2012, पृ. 29)।

7. प्रत्यक्ष पद्धति

प्रत्यक्ष पद्धति का अर्थ है "वह पद्धति जिसमें किसी भी क्रिया को करते समय उसके साथ क्रियावाचक शब्द या वाक्य देकर अथवा पदार्थ या गुण दिखाकर या भाव व्यक्त करके उस पदार्थ या गुण या भाव के शब्द बोध के साथ उसका अर्थ बोध भी कराया जाता है" (बधेका, 2012, पृ. 33)।

आमतौर पर प्रत्यक्ष पद्धति का प्रयोग विदेशी भाषा को सरलता से सिखाने के लिए किया जाता है। इसमें विद्यार्थी के सामने विदेशी भाषा सीधे-सीधे ही बोली जाती है। उसमें क्रियाएँ, गुण, अव्यय, नाम आदि को प्रत्यक्ष करके दिखाया जाता है। पाठशाला में भर्ती होने के समय तक बालक सहज भाव से, प्रत्यक्ष विधि से ही सबकुछ सीखता रहता है। अतः विद्यालय में भी उसे प्रत्यक्ष ज्ञान से ही सच्चा अनुभव करवाना चाहिए। इसके लिए शिक्षक को पाठशाला को भवन तक ही सीमित न रखकर आस-पास की समूची सृष्टि को शाला मानकर और उसमें मनुष्य के साथ प्रकृति को भी जोड़कर विद्यार्थी को उसका प्रत्यक्ष ज्ञान करवाना चाहिए।

8. योजना पद्धति

गिजुभाई के अनुसार यह विधि किलपैट्रिक द्वारा दी गई व्यावहारिक पद्धति है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि योजना पद्धति एक प्रश्न से शुरू होती है। एक प्रश्न को हल करते समय कई प्रश्न खड़े हो जाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर खोज लेने में सारी योजना अमल में आ जाती है और एक काम संपूर्ण रूप से पूरा हो जाता है। इस प्रकार विद्यार्थी सक्रिय रूप से और स्वेच्छा से ज्ञान प्राप्त करते हैं और क्योंकि यह ज्ञान अनुभव सिद्ध होता है इसलिए वह स्थायी भी होता है।

गिजुभाई के समय में ही पंजाब के मोगा नगर में इस प्रकार के शिक्षण का प्रयोग चल रहा था। गिजुभाई ने उसका विवरण दिया है –

"वर्ष के आरंभ में शिक्षक के द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में इस बात की चर्चा शुरू हुई कि गरमी की छुट्टियों में अपने-अपने गाँवों में गाँव वालों का स्वास्थ्य कैसा रहा? इस चर्चा के कारण विद्यार्थियों में इस बात को जानने की प्रबल इच्छा जागी कि बीमारियों की रोकथाम कैसे की जाए, अथवा बीमारों की सार-सँभाल किस तरह की जाए? शिक्षक ने सुझाया कि मोगा नगर के सरकारी अस्पताल में इसके बारे में पूछताछ की जाए। इस काम के लिए समितियाँ गठित की गईं। समितियों ने अस्पताल में जाकर वहाँ की परिस्थिति का अध्ययन किया और अपने-अपने प्रतिवेदन तैयार करके भेजे। उनके प्रतिवेदनों में ज़मीन के और मकानों के नक्शे थे। खर्च का अंदाज-पत्रक था। काम में आने वाली दवाइयों की सूची थी। नौकरों के कर्तव्यों की जानकारी थी और बीमारों की बीमारियों का ब्योरा था। अस्पताल किस तरह चलाना और कार्यालय की व्यवस्था कैसी रखनी चाहिए इसकी जानकारी भी थी। उन्होंने रुचिपूर्वक इस बात का पता लगाया कि सामान्य

बीमारियाँ क्या-क्या थीं, और कितने प्रतिशत रोगी उन बीमारियों से पीड़ित थे। इसके बाद उन्होंने अपनी कक्षा के अंदर एक छोटा-सा अस्पताल खोलने का निश्चय किया और वहाँ रहने वाले विद्यार्थियों को और दूसरे लोगों को सहायता पहुँचाई। कुछ फर्नीचर विद्यार्थियों ने खुद बनाया और कुछ उधार माँगा। बात का पता चलाया कि दवाइयाँ कहाँ मिलती हैं। अपने अस्पताल को चलाने के खर्च का अंदाज़-पत्रक तैयार किया। दवाइयों को तोलना सीखा। बोतलों पर लेबल लगाना, नक्शे बनाना और कार्यालय चलाना सीखा। इस प्रकार अस्पताल की एक योजना के सहारे उन्होंने इतनी सारी बातें सीख लीं। और भी बहुत-सी बातें सीखी" (बधेका, 2012, पृ. 36)।

"जब तक इस पद्धति से विद्यार्थी उत्साह के साथ काम करके सीखते हैं और काम के साथ ज्ञान को जोड़ते हैं तब तक ही यह पद्धति अच्छी है। यह पद्धति ऐसी नहीं है कि इसे हर कोई शिक्षक चला सके" (बधेका, 2012, पृ. 26)।

9. किंडरगार्टन पद्धति

इस पद्धति का प्रतिपादन फ्रोबेल ने किया था। जर्मन भाषा में इसका अर्थ है बच्चों का बाग। गिजुभाई दुख के साथ कहते हैं कि आज भारत में चल रही किंडरगार्टन पद्धति फ्रोबेल की मूल कल्पना और सिद्धांत पर आधारित न होकर तात्विक और धार्मिक समझदारी पर अथवा यूँ कहें कि दर्शन पर आधारित है। फ्रोबेल की पद्धति मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित है। किंडरगार्टन पद्धति के केंद्र में शिक्षक रहता है।

"गिजुभाई किंडरगार्टन पद्धति का आदर करते हैं किंतु उस पद्धति की सीमाओं के विषय में भी वे चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि किंडरगार्टन पद्धति में समय-चक्र की कुछ अंशों में पाठ्यक्रम की ओर रुचि जगाकर सिखाने की व्यवस्था है परंतु उत्तेजित रस के कारण किंडरगार्टन में बालक आकुल-व्याकुल बनता है और स्थिरता के बदले उसमें चंचलता और शक्ति के बदले उत्तेजना बढ़ती है। इसमें बालक की विशिष्ट शक्तियों की अवगणना होती है। इसलिए छोटी उम्र में बालकों को जिन-जिन विषयों का ज्ञान कराया जा सकता है, उन सब विषयों का इसमें समावेश नहीं किया गया है। सामाजिक विकास के लिए अच्छी गुंजाइश है परंतु इस बात की कोई कल्पना नहीं है कि उपेक्षित व्यक्तियों का समूह कितना पंगु बन जाता है।" (बधेका, 2012)

गिजुभाई कहते हैं "किंडरगार्टन पद्धति उसके बाद में विकसित पद्धतियों के लिए सीढ़ी स्वरूप है" (बधेका, 2012, पृ. 39)।

10. उन्मेष पद्धति

यह पद्धति शिक्षण सूत्रों पर आधारित है। यह माना जाता है कि किसी वस्तु से प्रथम परिचय होने पर ही हम उसको समग्र रूप में नहीं जान पाते हैं। अपितु पहले सामान्य, फिर सूक्ष्म, फिर सूक्ष्मतर और फिर सूक्ष्मतम चीज़ों को जान पाते हैं। कारण यह कि स्वाभाविक वृत्ति ज्ञात में से अज्ञात जानने की होती है और स्थूल से सूक्ष्म में जाने की होती है।

हम जानते हैं कि एक विशेष उम्र के लोगों की राजनीति में रुचि नहीं होती। धर्म तत्व एक विशेष अवस्था के लोगों की समझ में आ ही नहीं सकते।

चित्रकला की भी समझ एक उम्र विशेष पर ही हो पाती है। उसी प्रकार बालक भी अपनी एक खास उम्र में कुछ खास बातें ही समझ पाता है। एक छोटा बालक फल को देख सकता है, सूँघ सकता है, उसे चख सकता हैं, परंतु उसे देखकर उसके मन में वनस्पति शास्त्र के विचार नहीं उठ सकते।

ज्ञान प्राप्ति की बालक में कुछ सहज वृत्तियाँ होती हैं, जैसे —

(क) ज्ञात से अज्ञात में जाना।

(ख) स्थूल से सूक्ष्म में जाना।

(ग) अपनी आयु के अनुसार जितना ज्ञान आवश्यक है उतना ही ज्ञान लेना आदि।

उन्मेष पद्धति एक ऐसी ही शिक्षा पद्धति है जिसमें बालक की सहज वृत्तियों को ध्यान में रखकर बालक को ज्ञान दिया जाता है। उन्मेष पद्धति में वस्तु की रचना होती है। यह रचना ज्ञान प्राप्त करने की बालकों की सहज वृत्ति को ध्यान में रखकर की जाती है। गिजुभाई के अनुसार उन्मेष पद्धति द्वारा रचित वस्तुओं में नीचे लिखी बातें होनी चाहिए। वस्तु पुस्तक के रूप में ही हो, पदार्थ के रूप में हो, नक्शे के रूप में हो अथवा आलेख के रूप में ही हो, जैसे—

(क) रचना में वस्तु का समग्र दर्शन होना चाहिए।

(ख) दर्शन रेखा के रूप में होना चाहिए।

(ग) दर्शन में दी गई वस्तु ऐसी होनी चाहिए कि उसके आस-पास दूसरे दर्शन की बातें स्वाभाविक रूप से रची जा सके।

(घ) दूसरे दर्शन में पहले दर्शन के ब्योरों के आस-पास नए ब्योरों की रचना होनी चाहिए जो फिर तीसरे दर्शन के लिए तो पहले दर्शन के रूप में हो सकते हैं।

"इस प्रकार ज्ञात वस्तुओं के आस-पास रोज़-रोज़ अज्ञात वस्तुओं को बढ़ाते हुए आरंभ में रखी गई वस्तु के रेखाचित्र को संपूर्ण चित्र का रूप दे देना चाहिए" (बधेका, 2012, पृ. 39)।

11. कालक्रमानुसारी पद्धति

यह भी वर्तमान में प्रचलित इतिहास शिक्षा की एक पद्धति है जिससे आजकल इतिहास पढ़ाया जाता है। इस पद्धति का अर्थ है कि काल के प्रवाह के साथ इतिहास जैसा बना है उसको कालक्रम के अनुसार वैसे ही पढ़ाना। इस विधि में मुख्य कठिनाई यह है कि प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की इतिहास संबंधी कल्पना इतनी विकसित नहीं होती कि वे इतिहास की परतों की गहराई में जाकर इतिहास के पुराने प्रश्नों को अपने मन में प्रत्यक्ष कर सकें। वे रट तो लेते हैं परंतु वे घटनाएँ उनके दिल को छू नहीं पातीं। इस पद्धति को गिजुभाई उपयुक्त नहीं मानते थे। वे कहते हैं–

"वैसे इतिहास पढ़ाने की सफलता को और बालकों के हित को ध्यान में रखकर हमको इस पद्धति से इतिहास पढ़ाना छोड़ देना चाहिए" (बधेका, 2012, पृ. 42)।

12. व्युत्क्रम पद्धति

इतिहास शिक्षण की यह अन्य विधि है जो कालक्रमानुसारी पद्धति के बिलकुल विपरीत है। इसमें इतिहास को वर्तमान से आरंभ करके पीछे की ओर जाना होता है। जैसे अपना परिचय देने के बाद माता-पिता, फिर दादा-दादी और फिर पूर्वजों का परिचय। बालक की वर्तमान में जिसे वह प्रत्यक्ष देख सकता है, रुचि होती है और उसके सहारे वह सरलता

से अतीत में जा सकता है। इस विधि से इतिहास पढ़ाना उसके स्वभाव व रुचि के अनुकूल होगा। गिजुभाई इस पद्धति में इतिहास के साथ भूगोल की सहायता लेने का सुझाव देते थे जिससे बालक सरलता से सीख सके।

गिजुभाई के शब्दों में "इस पद्धति के अनुसार काम करते समय शुरू-शुरू में शिक्षक को यह काम कठिन मालूम पड़ सकता है। शिक्षक इसमें भी कहानी कहने की रीति का उपयोग कर सकता है। इससे भी आगे बढ़कर वह यात्राओं, प्रदर्शनियों, संग्रहालयों और जीती-जागती दुनिया के द्वारा बालक का ज्ञान बढ़ा सकता है। कालक्रमानुसारी पद्धति की भाँति इस पद्धति में भी शिक्षक नाट्य प्रयोग पद्धति का उपयोग अवश्य ही कर सकता है। प्रत्यक्ष वस्तु का नाटक खेलना बालकों के लिए आसान होगा। इसी के साथ भूतकाल में प्रवेश करने की दृष्टि से धीरे-धीरे विद्यार्थियों की अभिनय वृत्ति का भी विकास होता रहेगा" (बधेका, 2012, पृ. 43)।

13. पुस्तकालय पद्धति

गिजुभाई के अनुसार "पुस्तक स्वयं एक शिक्षा गुरु है और पुस्तकालय विद्यालय है" (बधेका, 2012, पृ. 43)। एक अच्छा पुस्तकालय कई शिक्षकों की ज़रूरत पूरी करता है। शिक्षक की तरह पुस्तकालय विद्यार्थियों को न तो धमकाता है, न उनसे अनुशासन का पालन करवाता है। न कक्षा में चढ़ाता है और न उतारता है, न मिथ्या स्पर्धा में प्रवेश कराता है और न ही परीक्षा का भय ही उत्पन्न करता है। फिर भी वह पल-पल में अपने पास आने वालों को प्रेमपूर्वक और शांतिपूर्वक पढ़ाता रहता है।

गिजुभाई पुस्तकालय की उपयोगिता के विषय में कहते हैं – "व्यवस्था, शांति, सभ्यता और विनय की शिक्षा देते रहने का प्रबंध भी पुस्तकालय कर सकेगा। पुस्तकों को कैसे उपयोग में लाना है, उनको किस तरह से पढ़ना है, पास में बैठकर पढ़ने वाले से कैसा व्यवहार करना है, कैसे आना है, कैसे जाना है, बातचीत किस तरह करनी है आदि बातों को सीखने में ही काफ़ी पढ़ाई हो जाती है। इस तरह पुस्तकालय की भी अपनी एक शिक्षा पद्धति है" (बधेका, 2012, पृ. 44)।

14. मुखपाठ पद्धति

जिस पद्धति में गुरु विद्यार्थी को मुँह से बोलकर शिक्षा देते हैं और जिसमें पाठ लेने के बाद विद्यार्थी उसको पोथी अथवा पुस्तक में देख-देख कर जुबानी याद कर लेते हैं, उसे मुखपाठ पद्धति कहते हैं। प्राचीन काल में पुराण पढ़ने वाले (और आज भी शास्त्री) इसी पद्धति से पढ़ाते थे। मुख से दिए जाने वाले पाठों के चिन्ह और कंडिकाएँ हाथों और सिर के हलन-चलन से सूचित होती थीं।

कई वस्तुएँ ऐसी हैं जो जीवन में कंठाग्र होनी ही चाहिए। कविता, पहाड़े आदि इस पद्धति के दो अन्य उदाहरण हैं। ज्ञान हाज़िर हथियार की तरह होता है उसे तो कंठस्थ होना ही चाहिए। गिजुभाई के अनुसार "चतुर शिक्षक को चाहिए कि वह शिक्षा के क्षेत्र में मुखपाठ को स्थान दें" (बधेका, 2012, पृ. 48)।

15. वेण पद्धति

यह लोक शिक्षा की पद्धति है जिसे गिजुभाई ने शिक्षा पद्धतियों में स्थान दिया है। यह मुखपाठ पद्धति का ही एक अन्य रूप है। गाँव की निरक्षर महिलाएँ किसी

ज्ञानवती वृद्धा से रामकथा या अन्य कथाओं को सुनकर और बोलकर सीखा करती थीं। हमारा पुराने से पुराना और कीमती से कीमती साहित्य एक मुँह से दूसरे मुँह तक पहुँचता रहता है। हमारा देश आज भी अपने जीवन की संस्कारिता के बहुत से अंशों को अपने बीच सहेजे हुए है। साहित्य और कला के क्षेत्र में आज भी उसकी दृष्टि निर्मल है जिसका एक कारण यह वेण पद्धति ही है। गिजुभाई इस पद्धति का शिक्षा में बहुत योगदान मानते थे। इस पद्धति के विषय में उनके विचार थे कि "आज की पाठ्यपुस्तकों वाली पद्धति मनुष्य की स्मृति के विकास को कोई स्थान नहीं देती। वह 'ग्रंथ गाँठ में और विद्यापाठ में' के सिद्धांत को भंग करती है। हम देख रहे हैं कि आज का ज्ञान स्थायी ज्ञान नहीं टिकता। वह परीक्षा तक ही होता है। उसका स्वरूप ज़रूरत के समय काम देने का नहीं होता बल्कि ऐन मौके पर वह बेकार साबित होता है। बैन पद्धति का दूसरा लाभ यह है कि उसके कारण निरर्थक विपुल पढ़ाई बढ़ती नहीं जो उत्तम है और ग्रहण करने लायक है उसी का संग्रह बना रहता है और बैन पद्धति के द्वारा समाज को उत्तरोत्तर ज्ञान मिलता रहता है" (बधेका, 2012, पृ. 49)।

16. श्रवण पद्धति

जो विषय सुनने की मर्यादा में आ सकते हैं और जिनमें तर्क की प्रधानता नहीं होती उन्हें इस विधि से सिखाया जा सकता है। बालक मातृभाषा इसी प्रकार सीखता है। इसलिए कान के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की स्वाभाविक रीति का उपयोग एक पद्धति के रूप में किया जा सकता है। संगीत ऐसा ही विषय है। सुनते रहने से ही संगीत रसिकता, साहित्य रसिकता, संगीत सृजन आदि की शक्ति विकसित होती है। बार-बार सुना कर जिससे सिखाया जा सकता है वह पद्धति श्रवण पद्धति होती है। परंतु बार-बार रोकने-टोकने को श्रवण पद्धति नहीं कहा जा सकता है। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि श्रवण पद्धति का परिणाम तुरंत प्रकट नहीं होता। गिजुभाई के शब्दों में "उसकी फ़सल लंबे समय के बाद पकती है। इसमें शिक्षक को विषय प्रस्तुत करने के लिए अच्छी तैयारी के साथ वातावरण की निश्चितता और स्थिरता की व्यवस्था करनी पड़ती है। जिस किसी भी चीज़ को सुनाकर सिद्ध करना हो, उसको उसी ढंग से और लगभग वैसे ही वातावरण में सुनाते रहना चाहिए" (बधेका, 2012, पृ. 50)।

17. कहानी पद्धति

गिजुभाई कहानी कथन को सीखने का एक रोचक माध्यम मानते थे। कथा या कहानी पद्धति को वे इतना अच्छा मानते थे कि उन्होंने इस पर एक पुस्तक में ही रचना अनुभवों को सँजोया है। कथा कथन को शास्त्र और पद्धति बनाने के लिए उन्होंने उद्देश्य, कथा चयन, कहने के समय प्राविधि आदि सभी बातों को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार "जब तक कहानी कहने वाले के मन में कहानी कहने का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होगा तब तक वह कहानी के चुनाव, उसकी कथावस्तु की क्रमबद्धता कहने की दृष्टि को लेकर अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ अनुभव करेगा" (बधेका, 2012, पृ. 51)।

हर कहानी कहने योग्य नहीं होती और फिर सबसे महत्वपूर्ण होता है कहानी कहने का ढंग। वस्तुतः कहानी कहने की शैली पर ही कहानी कहने की सफलता निर्भर करती है। साथ ही कहानी कहने का समय भी उपयुक्त होना चाहिए। कहानी के माध्यम

से मिली शिक्षा भुलाए नहीं भूलती है। पुराने समय में लोग जीवन और धर्म की शिक्षा कहानियों के माध्यम से ही देते थे। इसलिए गिजुभाई कहते थे — "कथा या कहानी की पद्धति से पढ़ाने की रीति को फिर अधिक सजीव बनाने की आवश्यकता है। क्योंकि वह सस्ती और सरल है" (बधेका, 2012, पृ. 52)। कथा पद्धति में कहानी को बालकों से पुनः कहलवाना वे अनुचित मानते थे।

18. चलचित्र पद्धति

गिजुभाई के समय में चलचित्र अस्तित्व में आ चुका था। गिजुभाई ने उसके महत्व को पहचाना और उसे एक पद्धति के रूप में स्वीकार किया। वे मानते थे कि चलचित्र के माध्यम से उन चीज़ों के दर्शन करना संभव है जिन्हें व्यक्ति अपने वास्तविक जीवन में नहीं देख सकता। यह अच्छी चीज़ों की शिक्षा देता है यद्यपि लोग इससे बुरी प्रकार की बातें भी सीख लेते हैं। भूगोल और इतिहास जैसे विषयों की पढ़ाई के लिए तो चलचित्र सर्वोत्तम है। परंतु साथ ही गिजुभाई सावधान भी करते हैं और कहते हैं कि बालकों को अपने साथ उन्हें चलचित्र दिखाने के लिए ले जाएँ क्योंकि बालक निरर्थक प्रहसन वाली फ़िल्में देखना पसंद तो करते हैं परंतु वे विकृत मानसिकता वाली होती हैं। अतः बालक उन्हें न देखें तो अच्छा। चलचित्र पद्धति के विषय में गिजुभाई कहते हैं कि "पुस्तकों में छपी रूखी-सूखी जानकारी अथवा समझ में न आने लायक जानकारियों को हम चलचित्रों द्वारा बहुत अच्छी तरह बालकों के सामने रख सकेंगे और उनको समझा सकेंगे" (बधेका, 2012, पृ. 56)।

19. उस्ताद पद्धति

"तृषावन्त जो होएगा, पीएगा झख मार" उस्ताद पद्धति के विषय में गिजुभाई का यही मत था। यह पद्धति बड़ी अटपटी पद्धति है। यह अपनी साधना की सर्वोच्चता को प्राप्त गुरुओं की पद्धति कही जा सकती है। गिजुभाई के ही शब्दों में "गुरु तो अपनी मस्ती में मस्त रहता है। उसने कोई विद्यालय खोला नहीं है। उसके पास कोई पाठ्यक्रम, उपकरण या पद्धति भी नहीं है। यह विद्यार्थी की खोज भी नहीं करता" (बधेका, 2012, पृ. 54)।

ज्ञान पिपासु शिष्य गुरु के चरणों में आकर बैठ जाता है। वह गुरु से ज्ञान की माँग नहीं करता बस अनन्य श्रद्धा भाव से सेवा करता रहता है। और योग्य गुरु जानबूझ कर उसे विचित्र और अटपटे कार्य सौंपते रहते हैं और खुद को जानबूझ कर 'उल्लू सा' दिखाते हैं परंतु ज्ञानार्थी अविचल श्रद्धा से सेवा करता रहता है। वही विद्यार्थी अंत में अपने गुरु की प्रतिभा का दर्शन करता है और दर्शन के साथ स्वयं भी प्रकाशित हो उठता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि गिजुभाई जिस व्यावहारिक व स्वाभाविक शिक्षण विधियों की वकालत करते हैं वह उनके सृजनात्मक अंतर्मन की अमूल्य धरोहर हैं। गिजुभाई का विचार है कि यदि बच्चे हँसते-खेलते कूदते रहते हैं तो वे थकान नहीं महसूस करते हैं। इसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए गिजुभाई ने अपना समूचा जीवन 'त्रिमूर्ति भवन' में लगा दिया। गिजुभाई की शिक्षण विधियों का प्रभाव राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005

पर भी पड़ा है। गौर से देखने पर पता चलता है कि एन.सी.एफ़.—2005 गिजुभाई की शिक्षण विधि का पूर्ण समर्थन करता है। अगर आज के हमारे प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक गिजुभाई द्वारा बतायी गयी शिक्षण विधियों का प्रयोग अपने अध्यापन में करते हैं तो प्राथमिक शिक्षा में आमूल परिवर्तन हो सकता है, और यही इस महान शिक्षा मनीषी के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

ग्रंथ सूची

एन.सी.ई.आर.टी. 2005. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

चारू. 2009. *गिजुभाई के शिक्षा दर्शन की आधुनिक शिक्षा में सार्थकता* (अप्रकाशित शोध प्रबंध). शिक्षा विभाग, जे. वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर.

बधेका, गिजुभाई. 2012. 'कठिन है माता-पिता बनना' (अनु. रामनरेश सोनी). *गिजुभाई रत्नावली भाग — दो*. सर्जना प्रकाशन, बीकानेर.

——. 2010. 'दिवास्वप्न' (अनु. रामनरेश सोनी). *गिजुभाई रत्नावली भाग—एक*. सर्जना प्रकाशन, बीकानेर.

बलहारा, अजय. 2007. *गिजुभाई बधेका का शैक्षिक चिंतन एवं आधुनिक भारतीय बाल-शिक्षा परिदृश्य में इसकी प्रासंगिकता* (अप्रकाशित शोध प्रबंध). शिक्षा संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी.

यादव, अवधेश. 2009. *भारतीय संदर्भ में गिजुभाई के शैक्षिक विचार* (अप्रकाशित लघु शोध). शिक्षा संकाय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर.

श्रीवास्तव, रश्मि. 2009. 'गिजुभाई बधेका का बच्चों के प्रति न्याय'. *परिप्रेक्ष्य*. 16 (3). पृ. 119–140.

5

पूर्व प्राथमिक शिक्षा
भारतीय संदर्भ में आवश्यकता

पद्मा यादव*

यदि हम पूर्व प्राथमिक शिक्षा के वर्तमान ढाँचे को देखें तो पता चलता है कि एक ओर व्यक्तिगत प्रबंध तंत्र द्वारा व्यावसायिक स्तर पर शहरी क्षेत्रों में चलाए जा रहे नर्सरी स्कूलों की भरमार हो गई है और दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों तथा शहर की झुग्गी-बस्ती में रहने वाले बच्चों के लिए व्यवस्थित और सुनियोजित प्रारंभिक शिक्षा व्यवस्था का पूर्ण अभाव है। नर्सरी स्कूलों में से अधिकतर केवल प्राथमिक स्कूलों का लघु रूप बनकर रह गए हैं, जहाँ छोटे बच्चों को औपचारिक रूप से पढ़ने-लिखने तथा गणित की शिक्षा दी जाती है। इस तरह बच्चों पर अनावश्यक बोझ व दबाव पड़ता है। इसके अलावा, कुछ नर्सरी स्कूल बच्चों को ऐसी शिक्षा देने का प्रयास करते हैं जो बच्चों को उनके परिवेश व पृष्ठभूमि से नहीं जोड़ पाते।

अत: आज आवश्यकता इस बात की है कि 3–6 आयुवर्ग के बच्चों की क्षमता, आवश्यकता तथा ग्रहणशीलता के स्तर को देखते हुए पूर्व प्राथमिक शिक्षा का ऐसा कार्यक्रम तैयार किया जाए जो बच्चे के परिवेश व परिस्थितियों के अनुकूल हो। साथ ही वह उनके विकास को गति प्रदान करे।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा पर बल देने तथा इसके स्तर को ऊँचा उठाने में सुनियोजित कार्यक्रम का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि इसके द्वारा बच्चे पढ़ने-लिखने की तैयारी के लिए ज़रूरी कौशलों से युक्त हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे आगे की शिक्षा को सरलता से ग्रहण कर पाते हैं।

जिन मूल्यों, मनोवृत्तियों, वांछित संस्कारों एवं आदतों का बीजारोपण हम बच्चे में करते हैं, बड़े होने पर उसके व्यक्तित्व में हम उन्हीं का विकसित रूप पाते हैं। आठ साल से नीचे आयुवर्ग को प्रारंभिक बाल्यावस्था कहते हैं। इसमें शैशव काल, विद्यालय पूर्व और प्रारंभिक प्राथमिक शिक्षा वर्ष आते हैं। पूर्व प्राथमिक शिक्षा मानव संसाधन विकास की एक आवश्यकता है। अत: पूर्व प्राथमिक शिक्षा के महत्त्व, स्वरूप, क्रियाकलापों और बालक-बालिकाओं पर पड़ने वाले प्रभाव पर विचार करना आवश्यक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 1986 का विचार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 1986 में पूर्व प्राथमिक शिक्षा को बहुत महत्त्व दिया गया। इसमें प्रारंभिक बाल

* *प्रोफ़ेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

कार्यक्रम के सभी पहलुओं पर ज़ोर दिया गया। साथ ही इसमें देखभाल को भी जोड़ा गया है, जिससे इसे प्रारंभिक बाल देखभाल एवं शिक्षा कहते हैं। देखभाल के प्रमुख तत्व हैं – स्वास्थ्य और पौष्टिक आहार।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा को मानव संसाधन विकास में एक महत्वपूर्ण निवेश के रूप में स्वीकार किया है। प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा में समुदाय की सहभागिता पर ज़ोर दिया गया है। साथ ही समेकित बाल विकास योजना (I.C.D.S.) और प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा (E.C.C.E.) कार्यक्रमों के सभी स्तरों के समन्वय पर भी बल दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने बहुत कम उम्र के बच्चों के लिए औपचारिक शिक्षा के दबाव (जैसे — पढ़ने-लिखने और गणित पढ़ाने) के प्रति चेतावनी दी है। इसमें खेल और क्रियाकलाप की गतिविधियों को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया गया है। इस नीति में गरीब बच्चों की देखभाल और प्रोत्साहन पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2000

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2000 के अनुसार पूर्व प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को विद्यालय के लिए तैयार करना है और इसलिए बाल देखभाल और शिक्षा, शिक्षा का एक प्रमुख तत्व है। समेकित बाल विकास योजना के अंतर्गत आँगनवाड़ियों में, पूर्व प्राथमिक शिक्षा आँगनवाड़ी की मुख्य सेवाओं में से एक है। यह अन्य कई रूपों में भी उपलब्ध है; जैसे – नर्सरी, किंडरगार्टन कक्षाएँ आदि, जो सरकारी और निजी, दोनों ही क्षेत्रों में एक-दूसरे से कुछ भिन्न हैं। इस तथ्य को स्वीकारना होगा कि शिक्षा की यह अत्यंत आरंभिक अवस्था बच्चे के व्यक्तित्व-निर्माण की अत्यंत नाजुक अवस्था है और इसका असर बच्चों की बाद की शिक्षा पर होता है। *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2000* में संस्तुति की गई है कि दो वर्ष की पूर्व प्राथमिक बाल देखभाल एवं शिक्षा 4 से 6 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को उपलब्ध कराई जाए, जिसमें किसी प्रकार का औपचारिक शिक्षण और मूल्यांकन नहीं होगा और जो स्कूल की तैयारी के लिए अनुभव प्रदान करेगी।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 में कहा गया है कि प्रारंभिक बाल्यावस्था स्तर, छह से आठ साल तक की उम्र का समय, बहुत ही संवेदनशील और निर्णायक होता है जब जीवनभर के विकास के आधार और समस्त संभावनाओं के द्वार खुलते हैं। छोटे-छोटे बच्चों की उचित देखभाल हो, उनके सर्वांगीण विकास के लिए पर्याप्त अवसर और अनुभव दिए जाएँ। सर्वांगीण विकास में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक विकास एवं विद्यालय के लिए तैयारी शामिल हैं। यह एक मानी हुई बात है कि बच्चों में सीखने और अपने आस-पास की दुनिया को समझने की स्वाभाविक इच्छा होती है। इसलिए शुरुआती वर्षों में अधिगम बच्चों की अभिरुचियों और प्राथमिकताओं के मुताबिक होना चाहिए और बच्चों के अनुभव पर आधारित होना चाहिए न कि औपचारिक।

शुरुआती वर्षों की शिक्षा में वही भाषा प्रयोग में लाई जानी चाहिए जिससे बच्चा अपने परिवेश

में परिचित हो। क्योंकि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के कार्य-क्षेत्र में जो बच्चे आते हैं उनका समूह बड़ा ही विषम जातीय होता है जिसमें शिशुओं से लेकर नर्सरी के विद्यार्थी होते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि उनके लिए आयोजित की गई गतिविधियाँ और अनुभव विकासात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त हों। बच्चों की असमर्थताओं की जल्द से जल्द की गई पहचान और उपयुक्त प्रेरणा देने से अपंगता से होने वाले अहित को रोकने में काफ़ी मदद मिल सकती है। इस स्तर पर बच्चों को ज़बरदस्ती लिखने, पढ़ने और अंकगणित सीखने का दबाव नहीं बनाया जाना चाहिए। 'प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के अच्छे कार्यक्रम का असर बच्चों के सर्वांगीण विकास पर पड़ता है।'

शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009

नि:शुल्क और अनिवार्य बालशिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009 में कहा गया है कि समुचित सरकार विद्यालय पूर्व शिक्षा की व्यवस्था कर सकती है।

अनुच्छेद 11 में कहा गया है कि "प्राथमिक शिक्षा के लिए तीन वर्ष से अधिक आयु के बालकों को तैयार करने तथा सभी बालकों के लिए जब तक वे छह वर्ष की आयु पूरी करते हैं, आरंभिक बाल्यावस्था देखरेख और शिक्षा की व्यवस्था करने की दृष्टि से समुचित सरकार, ऐसे बालकों के लिए नि:शुल्क विद्यालय पूर्व शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक व्यवस्था कर सकेगी।"

राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल्यावस्था देख-रेख और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) नीति – 2013

प्रारंभिक बाल्यावस्था देख-रेख और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) संरक्षित और अनुकूल वातावरण में देख-रेख, स्वास्थ्य, पोषण, खेलकूद और प्रारंभिक शिक्षा जैसे अभिन्न तत्वों को सम्मिलित करती है। यह पूरे जीवन के विकास और शिक्षण के लिए एक अपरिहार्य आधार है जिसका प्रारंभिक बाल्यावस्था विकास पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। ई.सी.सी.ई. को वरीयता दिया जाना और इसमें निवेश करना आवश्यक है क्योंकि यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आए सुविधाहीनता के चक्र को तोड़ने और असमानता को दूर करने के लिए सबसे अधिक कारगर उपाय है जो दीर्घकालिक सामाजिक और आर्थिक लाभ देता है।

राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल्यावस्था देख-रेख और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) नीति सभी बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए प्रसवपूर्व अवधि से छह वर्ष की आयु तक सतत रूप से समेकित सेवाएँ प्रदान करने की भारत सरकार की वचनबद्धता की अभिपुष्टि करती है। यह नीति प्रत्येक बच्चे की देख-रेख और प्रारंभिक अधिगम पर ध्यान केंद्रित करते हुए बच्चों की उत्तरजीविता, वृद्धि और विकास के लिए ठोस आधार सुनिश्चित करने के लिए एक व्यापक मार्ग प्रशस्त करती है। यह नीति बच्चे के स्वास्थ्य, पोषण, मनो-सामाजिक और भावात्मक आवश्यकताओं के बीच सहक्रियात्मक और परस्पर निर्भरता को स्वीकार करती है।

क्या है पूर्व प्राथमिक शिक्षा?

पूर्व प्राथमिक शिक्षा एक बाल-केंद्रित कार्यक्रम है जिसमें बच्चे खेल द्वारा ही सबसे अधिक सीखते हैं। खेल बच्चों के सर्वांगीण विकास में अमूल्य योगदान देता है। विकास की दृष्टि से पूर्व प्राथमिक स्तर के बच्चे अपने प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा सर्वाधिक सीखते हैं।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा के स्वरूप को रेखांकित करने के लिए निम्नांकित विशेषताएँ विचारणीय हैं —

- पूर्व प्राथमिक शिक्षा 3–6 वर्ष के बच्चों के लिए है। यह शिक्षा स्थानीय परिवेश के अनुसार 3 से 6 वर्ष के मध्य में दो वर्ष की होनी चाहिए।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा बच्चों के सर्वांगीण विकास अर्थात् भाषायी, शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास के लिए उत्प्रेरक वातावरण प्रदान करती है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा बच्चों को प्राथमिक (औपचारिक) शिक्षा के लिए तैयार करती है, प्राथमिक शिक्षा का लघु रूप नहीं है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा एक ऐसा कार्यक्रम है जो बच्चों को पढ़ने-लिखने व गणित सीखने के लिए तैयार करता है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा द्वारा बच्चों को प्रत्यक्ष अनुभव दिए जाते हैं जिससे उनमें सीखने की प्रक्रिया से संबंधित विकास होता है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा के अनुभव बच्चों में आत्मविश्वास पैदा करते हैं जिसके फलस्वरूप बच्चों में आंतरिक अनुशासन बढ़ता है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा की कार्यक्रम योजना परिवर्तनशील व लचीली होती है जिसे बच्चों की रुचि, आयु व स्तर को ध्यान में रखकर बनाया जाता है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा एक ऐसा कार्यक्रम है जो सामूहिक क्रियाकलाप के लिए प्रोत्साहित करता है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा, परीक्षा उन्मुख कार्यक्रम नहीं है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा 3–6 वर्ष की अवस्था के बच्चे की विशेषताओं को समझने तथा उन्हें और अधिक पनपने का अवसर देती है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा प्रत्येक बच्चे के महत्त्व को समझने के लिए प्रेरित करती है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा बालक-बालिका, दोनों के लिए समान रूप से लाभकारी है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा बच्चों में सद्गुणों का विकास कर, उन्हें समाज उपयोगी नागरिक बनने में मदद करती है।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने इस बात की पुष्टि की है कि 0–6 वर्ष की आयु में बच्चों के विकास की गति तीव्र होती है तथा यही आयु संस्कारों के निर्माण के लिए सबसे उपयुक्त होती है। यदि बच्चे के सर्वांगीण विकास में इस अवस्था का सदुपयोग न किया जाए तो इससे होने वाली क्षति कभी पूर्ण नहीं हो पाती। इस अवस्था में बच्चों की देख-रेख तथा शिक्षा पर ध्यान देने से ही भविष्य में देश को सुयोग्य एवं कर्मठ नागरिक मिल सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों में पूर्व प्राथमिक शिक्षा (3–6 वर्ष) की आवश्यकता स्वाभाविक है।

3–6 वर्ष के बच्चों के लिए

- हमारे देश में बच्चों की एक बड़ी संख्या को शिक्षा, परिवार में समृद्ध एवं उपयुक्त शैक्षिक वातावरण न मिल पाने व उनकी समुचित देख-रेख और मार्गदर्शन न होने से संभव नहीं हो पाती।

कभी-कभी बच्चे गलत आदतें भी सीख लेते हैं। पूर्व प्राथमिक शिक्षा में स्वच्छता और स्वस्थ आदतों के विकास पर बहुत अधिक बल दिया जाता है, क्योंकि 3–6 वर्ष की अवस्था सबसे अधिक संवेदनशील होती है, अत: इस समय सीखी हुई आदतें प्राय: स्थायी होती हैं। स्वच्छता और स्वच्छ आदतें इस आयु में अच्छी प्रकार से सिखाई जा सकती हैं।

- पूर्व प्राथमिक शिक्षा के अंतर्गत रोचक, मनोरंजक तथा उद्देश्यपूर्ण खेल-क्रियाओं के माध्यम से बच्चों में अच्छी आदतों एवं नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा द्वारा बच्चों को विकासोन्मुख और समृद्ध वातावरण दे सकते हैं।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा द्वारा शैक्षिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए परिवारों के बच्चों के विकास को गति मिल सकती है।
- रोचक एवं शिक्षाप्रद खेल-क्रियाओं के माध्यम से पूर्व प्राथमिक शिक्षा बच्चों में शिक्षा के प्रति रुचि को उत्पन्न करती है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा बच्चों में सुरक्षा व आत्म-विश्वास की भावना का विकास करने में सहायता करती है।
- छोटे बच्चों के बहुत से दोष/बीमारियाँ यदि शुरू में पता चल जाएँ, तो उनका इलाज होना सरल हो जाता है। यह केवल पूर्व प्राथमिक शिक्षा द्वारा ही संभव है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा के माध्यम से बच्चों में छिपी प्रतिभाओं और कौशलों को उभारने में सहायता मिलती है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा बच्चे के संपूर्ण जीवन की तैयारी है।

प्राथमिक शिक्षा में पूर्व प्राथमिक शिक्षा का योगदान

- पूर्व प्राथमिक शिक्षा द्वारा बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के लिए तैयार किया जा सकता है, क्योंकि प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले बच्चे शारीरिक, मानसिक और भाषायी विकास की दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा के लिए तैयार नहीं होते।
- कई परिवारों में लड़कियों को प्राथमिक विद्यालय जाने से रोक दिया जाता है, क्योंकि उन्हें अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करने के लिए घर पर ही रहना पड़ता है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा केंद्रों के खुल जाने से उनके छोटे भाई-बहनों की शिक्षा की व्यवस्था हो जाती है और ये लड़कियाँ प्राथमिक विद्यालय जा सकती हैं।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा 'बालिका-शिक्षा' के प्रसार को बढ़ावा देकर शिक्षा के सार्वजनीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।
- जिन बच्चों को उचित पूर्व प्राथमिक शिक्षा प्राप्त हो जाती है, उनके विद्यालय में नामांकन और ठहराव की संभावना बढ़ जाती है।
- प्रारंभिक वर्षों में मिले उचित मार्गदर्शन से बच्चों के विकास व उनकी क्षमताओं को विकसित करने में सहायता मिलती है तथा प्राथमिक विद्यालय में बच्चे उचित रूप से समायोजन कर सकने में समर्थ होते हैं।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा प्राप्त बच्चे दूसरे बच्चों की अपेक्षा विषय सरलता से सीख पाते हैं। उनकी

शैक्षणिक उपलब्धि बढ़ जाती है तथा फ़ेल होने की संभावना न के बराबर होती है।

- पूर्व प्राथमिक शिक्षा 3–6 वर्ष के बच्चों की शिक्षा के प्रति अभिभावकों और समुदाय को जागरूक बनाती है।

अभिभावकों व समुदाय के लिए

- पूर्व प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम माता-पिता के सर्वप्रथम शिक्षक होने के दायित्व को बल देता है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा के अंतर्गत अभिभावकों को अच्छी पूर्व प्राथमिक शिक्षा के महत्त्व विधि की जानकारी दी जाती है।
- अभिभावकों को ऐसी जानकारी दी जाती है जिसके द्वारा वे घर पर बच्चों में वांछनीय मूल्यों, संस्कारों व शिक्षा में सहायक गतिविधियों को कराने में समर्थ हो सकें।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम अभिभावकों को बच्चों के हित में उचित निर्णय लेने की योग्यता, नवीन कौशलों को सीखने की योग्यता के लिए प्रोत्साहित करता है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में अभिभावकों की सहभागिता केवल गुणात्मक सुधार लाने के लिए ही आवश्यक नहीं, बल्कि केंद्र संचालन, संसाधन जुटाने, एवं बच्चों की प्रगति का मूल्यांकन करने की क्षमता विकसित करने के लिए भी आवश्यक है।
- बच्चों की औपचारिक शिक्षा (पढ़ना, लिखना व गणित) तथा शैक्षणिक भार को कम करने के लिए अभिभावक महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। पूर्व प्राथमिक शिक्षा अभिभावकों को यह समझाने में मदद करती है कि औपचारिक शिक्षा पर ज़ोर देना इस अवस्था में बच्चों के विकास के लिए हानिकारक हो सकता है।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम बच्चों के लिए कार्य करने वाली स्वयंसेवी एवं सरकारी संस्थाओं, कार्यकर्ताओं, अभिभावकों एवं समुदाय को एक-जुट होकर प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होता है।

संक्षेप में, यह कार्यक्रम जीवनपर्यंत सीखने के लिए उत्तम नींव प्रदान करता है। इसीलिए यदि बच्चा बाद के वर्षों में अच्छे परिणाम प्रदर्शित करता है, तो शुरू में इस कार्यक्रम पर किया गया यह व्यय (खर्च) बहुत ही महत्वपूर्ण निवेश है।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य

- बच्चे में स्वस्थ आदतों का विकास और व्यक्तिगत समायोजन के लिए प्रमुख आवश्यक कौशलों का विकास करना; जैसे – कपड़े पहनना, भोजन करना, सफ़ाई आदि।
- इसके द्वारा बच्चों में वांछित सामाजिक दृष्टिकोणों का विकास होता है, जिससे बच्चे खेलकूद और विभिन्न क्रियाओं में सहभागिता कर सकें तथा दूसरों के अधिकारों और विशेषाधिकारों के प्रति संवेदनशील बन सकें।
- अपने विचारों, भावनाओं तथा संवेगों को व्यक्त करने, समझने, स्वीकार करने तथा नियंत्रित करने में बच्चे की सहायता करके उनमें भावात्मक/संवेगात्मक परिपक्वता लाना।
- बच्चों में सौंदर्यबोध की भावना को बढ़ावा देना।
- बच्चों में जिज्ञासा जागृत करना तथा जिस वातावरण में वे रहते हैं, उसे समझने में मदद करना। बच्चे को भ्रमण, खोज तथा प्रयोग करने के अवसर देकर उसमें नवीन रुचियाँ जागृत करना।

- आत्माभिव्यक्ति के अवसर देकर बच्चे में स्वतंत्रता तथा सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करना।
- अपने विचारों और भावनाओं को प्रवाह, स्पष्टता एवं शुद्धता के साथ व्यक्त करने की क्षमता विकसित करना।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा की विधियाँ

पूर्व प्राथमिक शिक्षा 3–6 आयुवर्ग के बच्चों की विशेषताओं के आधार पर खेल-विधि (Play-way method) से दी जाने वाली शिक्षा है अर्थात् यह खेल और क्रियाकलाप पर आधारित शिक्षा है, जिसमें निम्न खेल एवं क्रियाकलाप बहुत ही महत्वपूर्ण हैं — खेल, शिशुगीत, कहानी, वार्तालाप, कठपुतली, गुड़िया का खेल, प्रयोग, अभिनय, प्रकृति में विचरण, संगीत व लयात्मक क्रियाएँ, खेल-सामग्री के साथ संज्ञानात्मक एवं भाषा-संबंधी क्रियाएँ तथा कक्षा के अंदर व बाहर के खेल।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा में खेल का महत्त्व

- खेल विधि मुख्य रूप से बाल-केंद्रित (child-centered) विधि है जिसमें बच्चों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं, रुचियों तथा क्षमताओं को ध्यान में रखा जाता है।
- खेलना बच्चों की स्वाभाविक प्रकृति है। खेल का मैदान हो, घर हो, बाज़ार हो, या अन्य कोई स्थान, बच्चे चुपचाप नहीं बैठ सकते। जो कुछ भी उनके हाथ लगता है, चाहे वह पत्थर हो, पत्ता हो या तिनका हो, वे उसे उठाकर खेलने लगते हैं। खेल उन्हें बहुत प्रिय होता है और खेलने में उन्हें बहुत आनंद आता है।
- प्राय: लोगों की यह धारणा है कि खेलने से समय नष्ट होता है। माता-पिता इस बात से डरते हैं कि खेल में बच्चे लड़ेंगे-झगड़ेंगे। खेलने से क्या फ़ायदा? कुछ लिखेंगे-पढ़ेंगे तो कुछ सीखेंगे भी। यह सोचकर बच्चों को खेलने के अवसर कम देते हैं। वास्तव में, बच्चों के काम और खेल अलग नहीं हैं। बचपन में खेल ही उनके सीखने का एकमात्र साधन है। खेल के माध्यम से बच्चे अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं, साथ ही खेल के माध्यम से बच्चे अपने आस-पास के संसार को देख और समझ सकते हैं। इससे बच्चों को अपने सामाजिक संबंधों एवं स्वस्थ आदतों को विकसित करने में भी सहायता मिलती है। इस प्रकार बच्चे के सभी पक्षों के विकास में सहायक होने के कारण खेल का बहुत अधिक महत्त्व है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा देने के लिए खेल एक प्रभावी साधन है, क्योंकि खेल से बच्चे जल्दी और अच्छा सीखते हैं। खेल-खेल में प्राप्त ज्ञान सुदृढ़ होता है।
- खेल बच्चों की पाँचों इंद्रियों को विकसित करने में सहायक होते हैं।
- खेल द्वारा बच्चे अपनी ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों दोनों का उपयोग करते हैं, उनकी माँसपेशियाँ दृढ़ होती हैं, समझ बढ़ती है, आत्मविश्वास उत्पन्न होता है।
- खेल के माध्यम से बच्चे ठोस अधिगम-अनुभव प्राप्त करते हैं। संपूर्ण अधिगम प्रक्रिया में बच्चा एक निष्क्रिय प्राप्तकर्ता मात्र न रहकर स्वयं सक्रिय रूप से करके सीखने (Learning by doing) की क्रिया में भाग लेता है।
- खेल एक संतुलित क्रिया-प्रधान कार्यक्रम है, जिससे समस्त विकासात्मक उद्देश्यों की पूर्ति होती है। खेल बच्चों की अधिगम दक्षताओं;

जैसे — निरीक्षण, प्रयोग, समस्या-समाधान तथा सृजनात्मकता के विकास का पोषण करता है।

- खेल बच्चे के मानसिक और शारीरिक संतुलन बनाए रखने में भी सहायक होता है।
- खेल-क्रियाओं द्वारा बच्चों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के भीतर ही उनकी क्षमताओं और रुचियों को ध्यान में रखकर, उनका समुचित विकास किया जा सकता है।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के लिए आवश्यक खेल-सामग्री

बच्चे क्रियाशील होते हैं। वे कुछ-न-कुछ करते रहना चाहते हैं। इसी से वे विविध अनुभव प्राप्त करते हैं। इसके लिए पूर्व प्राथमिक शिक्षा केंद्रों में विभिन्न प्रकार की खेल-सामग्री की आवश्यकता होती है। बाल-केंद्रित व आनंददायी शिक्षण विधियाँ तथा रोचक क्रियाकलाप सामग्री, विद्यालय के वातावरण को आकर्षक एवं रुचिकर बनाती है और बच्चों के नामांकन, ठहराव तथा प्रतिधारण क्षमता में वृद्धि करती है। उपयोगी खेलों व क्रियाओं की व्यवस्था करने के लिए महँगी सामग्री की आवश्यकता नहीं है। परंतु क्रियाकलाप को प्रभावशाली बनाने के लिए कुछ साधारण उपकरण व सामग्री होना ज़रूरी है। कुछ आवश्यक खेल सामग्री आगे है–

- छोटी-बड़ी गेंद, रंगीन मनके, पिरोने के लिए धागा, पुराने टायर, झूले, संतुलन बनाए रखने के लिए उपकरण, ब्लॉक्स, डोमिनोज़, फ़्लैश काड्र्स, कठपुतलियाँ, विषय-संबंधी सामग्री, शिशु गीतों और कहानियों का संकलन, गुड़िया घर, पज़ल्स आदि।

हमारे खेल-खिलौने, गीतों तथा कहानियों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत अधिगम के लिए आधार प्रदान कर सकते हैं। इसके अलावा आस-पास के परिवेश में उपलब्ध सामग्री का प्रयोग करके आकर्षक खेल-सामग्री बनाई जा सकती है; जैसे– मिट्टी, पत्ते, फूल और अन्य प्राकृतिक वस्तुएँ। वस्तुएँ जिन्हें आप स्वयं बटोर कर खेल-सामग्री बना सकते हैं; जैसे – पुराने डिब्बे, कागज़, दियासलाई की खाली डिब्बियाँ, कड़े के टुकड़े, आदि। पूर्व प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में आस-पास के पर्यावरण एवं प्रतिदिन के जीवन की उपयोगी जानकारी का समावेश होना चाहिए।

सीखने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने व निरंतरता के लिए पूर्व प्राथमिक शिक्षा के आयोजन तथा घर के वातावरण के बीच जुड़ाव होना बहुत ज़रूरी है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा में बच्चों के व्यक्तित्व को कृत्रिम बनाने के बजाय उसकी स्वाभाविकता को बनाए रखने पर अधिक ज़ोर देने की ज़रूरत है। संक्षेप में, कार्यक्रम योजना का आधार सामाजिक समन्वय एवं एकता या एकात्मकता के साथ-साथ भौतिक एवं भावात्मक जुड़ाव होना चाहिए।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा में परिवार व शिक्षिका की भूमिका

बच्चे के विकास में उद्दीपन का विशेष महत्त्व है। यहाँ उद्दीपन से तात्पर्य है – प्रेरणा। बच्चा उचित अवसरों को पाकर कुछ क्रिया-प्रतिक्रिया करता है। इस क्रिया-प्रतिक्रिया से वह सीखता है और सीखने से उसके विकास को एक गति मिलती है। जीवन में बच्चे का पहला संपर्क अपने माता-पिता के साथ

होता है। बच्चे का अधिकतर समय परिवार के साथ व्यतीत होता है। यह तो माता-पिता का फर्ज़ है कि वे बच्चे का पालन-पोषण करें, किंतु पालन-पोषण केवल पौष्टिक भोजन और साफ़-सुथरे कपड़ों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। माता-पिता यह भूल जाते हैं कि बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

गृह-शिक्षक के रूप में अभिभावक

कुछ युवा माता-पिता प्रारंभिक बाल्यावस्था की उत्प्रेरक गतिविधियों की महत्ता व प्रासंगिकता को नहीं मानते, तो कुछ माता-पिता उन्हें यांत्रिक रूप से प्रयोग में लाते हैं, तो कुछ को इनका ज्ञान ही नहीं होता और वे बच्चों को घर पर अनावश्यक औपचारिक शिक्षा के बोझ तले दबा देते हैं।

सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण संयुक्त परिवारों का विघटन होता जा रहा है तथा नौकरी की तलाश में लोग मूल स्थान छोड़ते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप, बच्चों के पालन-पोषण के परंपरागत तरीके तेज़ी से बदलते जा रहे हैं। अब पुराने खेल, गीत, कहानियाँ, घरेलू खिलौने जो बच्चों के माता-पिता तथा घर के बड़े-बूढ़े, दादा-दादी आदि उपयोग में लाते थे, उनका उपयोग लगभग समाप्त होता जा रहा है।

संयुक्त परिवार से एक और लाभ भी था – परिवार में सगे संबंधियों के बच्चे भी होते थे। सब मिलकर खाते-पीते, खेलते और एक-दूसरे से सीखते भी थे। आज के छोटे (लघु) परिवार में इन सबकी कोई संभावना नहीं।

अभिभावकों को चाहिए कि अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से प्राप्त बाल विकास संबंधित खेल, क्रियाकलाप, कहानियाँ और गीतों का प्रयोग बच्चों के साथ करें। बच्चा प्रतिदिन परिवार के सदस्यों के साथ अनेक प्रकार की पारस्परिक क्रियाएँ करके अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा प्राप्त करता है।

माता-पिता अगर बच्चे को उसके हाल पर छोड़ दें तो बच्चा अपने वातावरण में जो कुछ देखेगा, सही या गलत, उसे अपना लेगा, क्योंकि उसमें अभी इन दोनों में अंतर करने की क्षमता का अभाव होता है। परंतु माता-पिता जब घर में एक प्रेमपूर्ण सीखने का वातावरण बनाते हैं तो बच्चों के भीतर सुरक्षा और जिज्ञासा की भावना पैदा होती है। अत: शिक्षिका तथा माता-पिता को मिलकर यह प्रयास करना चाहिए कि बच्चा सीख सके और आगे बढ़ सके। माता-पिता की सहभागिता से अभिप्राय है कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा के नियोजन और क्रियान्वयन में वे आगे बढ़कर शिक्षिका की सहायता करें और बच्चे के अभिभावक की भूमिका को अधिक सफलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से निभाएँ। कक्षा में 'थ्री आर्स' सीखने पर विशेष बल दिया जाता है। इस तरह के तरीके प्रयोग करने से बच्चे तो बोझ तले दबे ही रहते हैं, माता-पिता दबाव में रहते हैं। बच्चे के जीवन को उपयुक्त साँचे में ढालने के लिए शिक्षक एवं माता-पिता की अहम भूमिका है। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चे पर अनावश्यक दबाव न डालें, बल्कि उनके साथ खेलें। खेल-खेल में ही बच्चे बहुत कुछ सीखते जाते हैं। साथ ही माता-पिता को चाहिए कि शिशु उद्दीपन की पर्याप्त जानकारी प्राप्त करके बच्चों का उद्दीपन सार्थक एवं प्रभावशाली बनाएँ।

बच्चे को प्रोत्साहित व प्रेरित करने के लिए माता-पिता को घर पर निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए—

- बच्चे के साथ गुणात्मक समय (quality time) बिताएँ।
- बच्चे के साथ बातें करें। बच्चे को अधिक से अधिक बोलने का अवसर दें।
- बच्चे को प्यार और सुरक्षा की भावना दें।
- बच्चे को गीत, कविता और कहानियाँ सुनाएँ और सुनें।
- बच्चे के साथ उसका साथी बनकर खेलें।
- उन्हें उचित मार्गदर्शन दें।
- बच्चे को अधिक रोकें–टोकें नहीं।
- बच्चे की बात धैर्य से सुनें।
- बच्चे को खिलौने और उसके आयु के अनुसार चित्र-पुस्तकें दें।
- बच्चे को घर के बाहर घुमाने ले जाएँ और आस-पास की चीज़ों के बारे में बातचीत करें। बच्चों के चारों तरफ के वातावरण में जो परिवर्तन हो रहा है, उनकी तरफ उसका ध्यान दिलाएँ।
- बच्चे की तुलना दूसरे बच्चों के साथ न करें। हर बच्चे की क्षमता भिन्न होती है।
- क्रियाकलाप व खेल बच्चे की आयु, स्तर और क्षमता के अनुसार दें।
- क्रियाकलाप/खेल/खिलौने ऐसे हों, जो बच्चे के विकास की दृष्टि से उपयोगी हों।
- आपका व्यवहार ऐसा हो कि बच्चा उसका अनुकरण करे।
- बच्चे के प्रश्नों के उत्तर दें और उसमें खोजबीन की आदत डालें। बार-बार प्रश्न पूछने पर उसे डाँटे नहीं।
- घर का वातावरण तनाव से मुक्त रखें, ताकि बच्चा सुरक्षित महसूस करे।
- बच्चों को अपने-आप अनुभव करके सीखने का मौका दें, क्योंकि वे स्वयं चीज़ों को छूकर, सूँघकर, चखकर, ध्यानपूर्वक देखकर, सीखना चाहते हैं।

क्रियाकलाप व खेलों से बच्चे को माता-पिता व घर के अन्य वयस्कों के साथ रहने एवं आदान-प्रदान के अधिक अवसर मिलते हैं। बड़े लोगों के साथ अर्थपूर्ण समय (quality time) बिताने से बच्चे को निम्नलिखित लाभ होते हैं –

- बच्चे में सुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है।
- बच्चे को अपने अस्तित्व का बोध होता है।
- सबके साथ सामंजस्य स्थापित करना सीखता है।
- दूसरों के प्रति विश्वास की भावना जाग्रत होती है।
- उसमें आत्मविश्वास की भावना सबल होती है।
- आत्माभिव्यक्ति के अवसर मिलते हैं।
- बच्चे में उत्सुकता और उत्साह की वृद्धि होती है।
- सोचने-समझने, कल्पना शक्ति विकसित करने के अवसर मिलते हैं।
- और अधिक जानने तथा सीखने की जिज्ञासा बढ़ जाती है।
- अपने वातावरण के प्रति आकर्षण बढ़ता है।
- अन्य लोगों के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न हो जाती है।
- माता-पिता व अन्य वयस्कों द्वारा पौराणिक कथाएँ (जैसे – रामायण, महाभारत एवं जातक कथाएँ) आदि सुनकर नैतिक मूल्यों एवं अच्छे विचारों का निर्माण होता है। माता-पिता को चाहिए कि इन कथाओं से रोचक प्रसंग लेकर सरल भाषा में सुनाएँ। समय का अभाव होने पर भी माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वे समय निकालकर बच्चों

को कहानी अवश्य सुनाएँ, क्योंकि कहानी सुनने से बच्चों को आनंद मिलता है, उनकी कल्पनाशक्ति का विकास होता है, उनका ज्ञान बढ़ता है और वे नए-नए शब्द भी सीखते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी पुस्तकों के प्रति रुचि भी विकसित होती है।

- जब माता-पिता या कोई भी परिवार का सदस्य बच्चों के साथ मिलकर गाता और खेलता है, तो बच्चे उन्हें अपने नज़दीक पाकर बहुत खुश होते हैं। वे अपने को सुरक्षित महसूस करते हैं। लेकिन आजकल जीवन की गति इतनी तेज़ हो गई है कि माता-पिता को बच्चों के साथ गाने व खेलने का समय कम ही मिल पाता है। जीवन की व्यस्तता के कारण हम इन प्रचलित परंपरागत गीतों को भूलते जा रहे हैं। माता-पिता को इन्हें फिर से बच्चों के जीवन में लाने का प्रयास करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यस्त होने के बावजूद भी समय निकालकर अपने प्रांत में प्रचलित परंपरागत गीतों, खेलों को बच्चों के साथ अवश्य खेलें, क्योंकि अच्छे संस्कारों की नींव माता-पिता द्वारा ही पड़ती है।

यदि बच्चे को प्रारंभिक वर्षों में पर्याप्त भोजन, प्रेम और उत्प्रेरणा मिले, तो उसका प्रभाव उसके भावी जीवन और शिक्षा पर पड़ेगा। साथ ही स्वस्थ एवं उत्पादक जीवन-कला के वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने में उसे अवश्य सहायता मिलेगी।

- उचित खेल-क्रियाओं द्वारा माता-पिता और बच्चे एक-दूसरे को ठीक से समझ सकते हैं।
- अगर माता-पिता बच्चे को आस-पास के वातावरण को समझने में सहायता दें, तो बच्चे का सामान्य ज्ञान बढ़ेगा और शुरू से ही बच्चे के प्रश्नों का तर्कपूर्ण या सही उत्तर दें, तो दृष्टिकोण वैज्ञानिक बनेगा।
- समुचित उद्दीपन क्रियाओं के माध्यम से शिशुओं में जिज्ञासा प्रवृत्ति जागृत की जा सकती है।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा में शिक्षिका की भूमिका

पूर्व प्राथमिक शिक्षा में केंद्र-बिंदु बच्चा है और शिक्षिका उसकी पथ-प्रदर्शिका है। प्रारंभिक बाल शिक्षा केंद्र में आने वाला बच्चा अपने घर की सुरक्षा तथा घर से प्राप्त होने वाली मान्यताओं और सुविधाओं को छोड़कर आता है, इसलिए शिक्षिका का दायित्व है कि वह—

- सहनशील रहे।
- बच्चों को माँ का प्यार दें, ताकि बच्चे केंद्र में माँ की अनुपस्थिति में भी सुरक्षित महसूस करें।
- संस्कृति के संपोषण तथा संप्रेषण के लिए भाषा, मूल माध्यमों में से एक है। बच्चों तथा अभिभावकों में विश्वास की भावना जागृत करने के लिए उनकी मातृभाषा में बात करना अत्यंत प्रभावकारी है। अत: शिक्षिक/शिक्षिकाएँ कोशिश करें कि वे बच्चों से उनकी मातृभाषा में बात कर अपनी शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावकारी बना सकें।
- विभिन्न स्थानीय सामग्रियों/वस्तुओं द्वारा अधिगम के लिए वातावरण तैयार करें।
- हमारी भावनाएँ, हमारे विश्वास एवं मूल्यों से प्रभावित होती हैं। अपनी भावनाओं को बच्चे पर थोपें नहीं, अपितु बच्चे की योग्यता एवं क्षमता में विश्वास करें तथा आगे बढ़ने में उसकी सहायता करें।
- बच्चों को समाधान ढूँढ़ने के अवसर प्रदान करें और उसे अपनी गति से सीखने दें।

- बच्चे को किसी भी ऐसे नाम से न बुलाएँ, जिससे बच्चे के प्रति आपके विश्वास में कमी झलकती हो।
- बच्चे के समक्ष बातचीत के आदर्श तरीके प्रस्तुत करें।
- बच्चों का सम्मान करें। इससे उनमें आत्मसम्मान का विकास होता है।
- हतोत्साहित करने वाले शब्दों व व्यवहार का प्रयोग न करें।
- बच्चा जैसा है, वैसा ही स्वीकारें।
- बच्चे को अपनी क्षमताओं का पता चलने दें, उसके प्रयासों को प्रोत्साहन दें और संप्राप्ति पर सराहना करें।
- बच्चे की गलतियाँ ढूँढ़ने के स्थान पर उसकी क्षमताओं, योग्यताओं एवं सामर्थ्य पर ध्यान दें।
- बच्चे को सही कार्य करने पर, चाहे वह छोटा-सा ही क्यों न हो, उसकी प्रशंसा करें।
- बच्चे को सही और गलत का अंतर सिखाएँ। शिष्टाचार तथा स्वस्थ आदतों के विकास में बच्चे में सही और गलत का ज्ञान होना आवश्यक है।

ग्रंथ सूची

एन.सी.ई.आर.टी. 2010. राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र–*प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

कौल, विनीता. 1976. *प्रारंभिक बाल शिक्षा कार्यक्रम*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

यादव, पद्मा. 2015. *एक्ज़ेम्प्लर गाइडलाइंस फ़ॉर इंप्लीमेंटेशन ऑफ़ अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन करीकुलम*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

सेन गुप्त, मंजीत. 2013. *प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा*. पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली.

सोनी, रोमिला. 2003. *पूर्व प्राथमिक शिक्षा–एक परिचय*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

6

पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक संवेगात्मक विकास

सुनैना मित्तल*

प्रस्तावना

सभी बच्चों के व्यवहार, गुणों और क्षमताओं में व्यक्तिगत भिन्नता होती है। कुछ बच्चे बहुत मिलनसार, स्वाधीन व जिज्ञासु होते हैं जबकि अन्य बच्चे दूसरों पर निर्भर रहने वाले तथा संकोची प्रवृत्ति के होते हैं। हर बच्चे का अपना अलग व्यक्तित्व होता है। यह कुछ अंश तक जन्मजात होता है किंतु बहुत कुछ यह बच्चों के पर्यावरणीय तत्वों पर निर्भर करता है–

- बच्चे से संबद्ध समाज या सांस्कृतिक समूह के मूल।
- घर में पुरस्कार एवं दंड की प्रणाली।
- समान उम्र वाले बच्चों के साथ बराबरी का व्यवहार।
- आस-पास के वातावरण के साथ-साथ जनसंचार के साधनों में व्यवहार का आदर्श।

लेखिका स्वयं भी आई.आई.टी. नर्सरी स्कूल, हौज़खास, नयी दिल्ली में कार्यरत है। इस विद्यालय में मुख्यत: बच्चों को स्वयं करके सीखने के लिए प्रेरित किया जाता है। उन्हें एक प्रेरणादायक खेल वातावरण दिया जाता है जिससे उनका बौद्धिक, भाषायी, सामाजिक, संवेगात्मक तथा शारीरिक विकास हो सके।

प्रारंभिक बाल शिक्षा कार्यक्रम

प्रारंभिक बाल शिक्षा एक ऐसा कार्यक्रम है जो तीन से आठ वर्ष तक के बच्चों को पर्यावरण के साथ अंत: क्रिया करने, सामूहिक क्रियाकलाप में सहभागिता करने तथा समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस कार्यक्रम में बच्चों को प्रत्यक्ष अनुभव दिया जाता है, जिससे उनमें सीखने संबंधित कौशलों का विकास हो सके। इसे पूर्व प्राथमिक शिक्षा भी कहते हैं। इस समय बच्चों को औपचारिक शिक्षा नहीं दी जाती।

कैसा होता है इस उम्र में बच्चा

पूर्व बाल्यावस्था (जन्म से आठ वर्ष की आयु) में क्रोध, भय, ईर्ष्या, स्नेह, जिज्ञासा और हर्ष जैसी संवेगात्मक दशाओं का अनुभव बच्चे को होता है। इनमें से प्रत्येक संवेग की अभिव्यक्ति यद्यपि शैशवावस्था में हो जाती है। तथापि इस अवस्था में कुछ नए संवेग विकसित हो जाते हैं और प्रत्येक संवेग को उकसाने वाले ऐसे उद्दीपन भी उत्पन्न हो जाते हैं जिनका अनुभव अधिकांशत: छोटे बालकों को सामान्य रूप से होता है। इस अवस्था में बालक का सामाजिक परिवेश विकसित हो जाता है। अब वह पास पड़ोस के बच्चों के साथ खेलना आरंभ कर

* *शिक्षिका,* आई.आई.टी. नर्सरी स्कूल, हौज़खास, नयी दिल्ली

देता है। अत: बच्चे में समायोजन की समस्या उत्पन्न होने की प्रबल संभावना होती है जिससे वह तनाव का अनुभव करता है। बालक जितना छोटा और अनुभवहीन होगा, तनाव के उत्पन्न होने की संभावना उतनी ही अधिक होगी।

प्रारंभिक बाल शिक्षा स्तर पर बच्चा स्फूर्ति से भरा होता है। इस स्तर पर सरल क्रियाओं की योजना बनाकर स्वयं उन्हें स्वतंत्र रूप से करने की पहल करता है। यदि बालक को उसकी इच्छानुसार कार्य नहीं करने दिया जाता है तो बालक जल्दी निरुत्साहित हो जाता है और झल्लाहट अनुभव करता है। अत: अभिभावकों और शिक्षिका का यह दायित्व होता है कि वे बच्चे को यह समझाने में सहायता करें कि क्या करना उचित होगा और क्या नहीं। बाल्यकाल में शिशु की यह आवश्यकता होती है कि हर समय कोई न कोई वयस्क उस पर ध्यान दे। जब शिक्षिका उसे छूती है, उसे थपथपाती है या गले से लगा लेती है तो बच्चे खुश हो जाते हैं।

पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक विकास के मूलभूत सिद्धांत

- बच्चे के जिस व्यवहार को पुरस्कृत और प्रोत्साहित किया जाता है, उसे वह दोहराता है एवं उससे सीखता है। जिस व्यवहार के लिए उसे दंड दिया जाता है व हतोत्साहित किया जाता है वह उसे छोड़ता जाता है।
- बच्चे अपने आस-पास के वातावरण का निरीक्षण करके अनेक प्रकार के व्यवहार एवं क्रियाएँ सीखते हैं। माता-पिता, शिक्षिकाएँ, बड़े बच्चे आदि सभी बच्चे के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

बच्चे केवल व्यवहार और क्रियाओं का अनुसरण नहीं करते, बल्कि इसमें अभिवृत्तियों एवं विश्वासों को भी मन में धारण करने की बात शामिल है।

पूर्व बाल्यावस्था में स्वाभाविक संवेगात्मक समस्याएँ

प्राय: सभी प्रारंभिक बाल शिक्षा केंद्रों में एक या अधिक बच्चे ऐसे होते हैं—

- जो चुपचाप बैठे होते हैं तथा कक्षा में कराई जाने वाली क्रियाओं में रुचि नहीं लेते हैं।
- जो अत्यधिक आक्रामक होते हैं तथा अपने आप उपद्रव मचाते हैं।
- कुछ बच्चे अत्यधिक चंचल होते हैं और अपने इसी स्वभाव के कारण वह किसी भी क्रिया में एकाग्रचित नहीं हो पाते।
- कुछ बच्चे सदैव कक्षा में शांत रहते हैं। हो सकता है कि माता-पिता और शिक्षिका के द्वारा यह डर बैठा दिया जाना कि वह उसे सजा देगी या गृह तनाव जैसे माता-पिता के बीच लड़ाई आदि अन्य कोई भी कारण हो सकता है।

क्या करें शिक्षक?

शिक्षक बच्चों के क्रिया-कलाप एवं खेल के माध्यम से संवेगों पर नियंत्रण करना सिखा सकते हैं। कुछ सुझाव इस प्रकार हैं–

कविता के द्वारा

बच्चों को आधे गोले में खड़ा करें। शिक्षिका बच्चों के साथ क्रिया करते हुए निम्नलिखित गीत गाती हैं —

बिल्ली खुशी से गाती है
बिल्ली खुशी से गाती है
जब वह मुँह धोती है
जो नहीं मुँह को धोता है

उसका मुँह गंदा होता है
बिल्ली खुशी से गाती है
जब वो नाखून काटती है
जो नाखून नहीं काटता है
उसके नाखून गंदे होते हैं
जब वो बात बनाती है
जब वो रोज़ नहाती है
जब वो रोज़ नहाती है

बच्चे इस तरह की कविताएँ हाव-भाव के साथ गा सकते हैं। वे खुश होते हैं और उनमें स्वच्छ आदतों का विकास होता है।

दैनिक वार्तालाप से

व्यक्तिगत स्वच्छता के विषय में दैनिक क्रियाओं से संबंधित वार्तालाप करने से बच्चों को अच्छी आदतों को समझने में सहायता मिलती है।

बच्चों को अच्छी आदतों से परिचित कराने के लिए उन्हें कहानियाँ, कविताएँ व कठपुतली के खेल आदि भी महत्वपूर्ण होते हैं, जैसे–

आओ करें दाँत में मंजन
आओ करें दाँत में मंजन
जैसे चले गाड़ी का इंजन
छुक-छुक आगे, छुक-छुक पीछे
छुक-छुक ऊपर, छुक-छुक नीचे
मंजन करके कर लो कुल्ला
हा-ही, हा-ही हुल्ला गुल्ला

कार्ड का खेल

बच्चों को कुछ कार्ड दिए जाएँगे जिनमें अच्छी और बुरी आदतों के चित्र होंगे। बच्चों से उनका वर्गीकरण कराया जाएगा।

स्वतंत्र खेल

बच्चों के सामने कई आकर्षक क्रियाएँ प्रस्तुत कर उन्हें अपने लिए क्रियाओं का चुनाव करने के लिए प्रोत्साहित करें कि वे निर्णय लेने के साथ-साथ उसकी मौखिक अभिव्यक्ति भी करें।

पूर्व बाल्यावस्था में प्रमुख उद्देश्य बच्चे को आत्म-केंद्रित से समाज-केंद्रित बनने की दिशा में सहायता देना होता है। उदाहरणार्थ, दूसरों के साथ खेलने, दूसरों के साथ होने, दूसरों की सहायता करने और साधारण तथा सामाजिक बनने की दिशा में सहायता देना होता है।

प्रारंभिक बाल शिक्षा कार्यक्रम या पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य बच्चों में अच्छी आदतों का निर्माण करना है।

व्यक्तिगत आदतें

- व्यक्तिगत स्वच्छता एवं सफ़ाई का ध्यान रखना।
- भोजन की सही आदत।
- शौच की सही आदत।
- खाने से पहले व बाद में हाथ धोना।
- खेलने के बाद खिलौने को वापस अपनी जगह पर रखना।

सामाजिक आदतें

- दूसरों की मदद करना, दूसरों के समान व सम्पत्ति का आदर करना।
- शिक्षिका तथा अपने से बड़ों के साथ सहयोग करना।
- अपनी बारी की प्रतीक्षा करना।
- अच्छे सामाजिक तरीके सीखना।

सामाजिक संवेगात्मक विकास के लिए सुझाव

- बच्चे को समझाएँ कि पेड़ों की पत्तियों, टहनियों और फूलों को न तोड़ें।
- मानव तथा पशु दोनों के जीवन को समान समझना।
- यदि संभव हो तो बच्चों की सहायता से बागबानी करें। इससे बच्चों के अंदर प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता का विकास होगा।
- पर्यावरण तथा उसकी सुरक्षा से संबंधित कहानियाँ व गीत सुनाना।
- कक्षा के अंदर व बाहर खेल के मैदान में पड़े कागज़ के टुकड़ों, कंकड़ों आदि को कूड़ेदान में डालने को कहें जिससे बच्चे स्वच्छ पर्यावरण का महत्त्व समझेंगे।

बालक के सामाजिक संवेगात्मक विकास में शिक्षिका की अहम भूमिका होती है। हर बच्चे को स्नेहपूर्ण व सुखद वातावरण देना शिक्षिका का मुख्य कर्तव्य होना चाहिए। प्रारंभिक बाल शिक्षा स्तर का बच्चा स्फूर्ति से भरा होता है तथा इस समय बच्चों को सरल क्रियाएँ करानी चाहिए व उन्हें स्वतंत्र रूप से खेलने देना चाहिए।

शिक्षिकाओं एवं माता-पिता की भूमिका

- प्रत्येक बच्चे पर ध्यान दें।
- सदैव बच्चों को उनके नाम से पुकारें इससे उनमें आत्मगौरव की भावना जागेगी।
- सभी बच्चों की बराबर प्रशंसा करें और उन्हें प्रोत्साहित करें।
- हर बच्चे के अच्छे गुणों को सभी के सामने उजागर करने की कोशिश करें।
- हर बच्चे को बोलने का अवसर दें और उसे अपनी भा वनाओं को दूसरों के सामने व्यक्त करने दें।
- बच्चों की रचनात्मक, अभिनयात्मक क्रियाओं, संगीत, तथा रचनात्मक क्रियाओं के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का व्यवहार दें।
- बच्चे की तुलना न करें। हर बच्चा अपने में विशिष्ट है।
- बच्चों की आलोचना न करें। उससे उनके अंदर हीन भावना उत्पन्न होती है।
- बच्चों को कभी भी मारें-पीटें नहीं और कभी गाली भी न दें। वे आपका अनुकरण करेंगे और बुरा व्यवहार सीखेंगे।
- लड़कों-लड़कियों को अलग-अलग तरह का व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित न करें।

7

प्रारंभिक स्तर पर नाटकों के माध्यम से भाषा-शिक्षण

मेहराज अली*

प्रस्तावना

बाल साहित्य में बच्चों के लिए अजीबोगरीब रोमांचक तथा प्रेरक घटनाओं का विवरण ही नहीं होता अपितु उनके लिए तो पूरा संसार होता है जिसमें वे रहते हैं, संघर्ष करते हैं, बुराई का अपनी अच्छाई से मुकाबला करते हैं। इसके साथ ही कथा कहानियों में बच्चों की आत्मिक शक्ति को शब्दों में अभिव्यक्ति मिलती है। बच्चा कहानी सुनना ही नहीं चाहता बल्कि सुनाना भी चाहता जैसे कि वह गीत सुनना ही नहीं चाहता बल्कि गाना भी चाहता है, खेल देखना ही नहीं चाहता, खेलना भी चाहता है। उसी भांति वह नाटक देखना ही नहीं चाहता बल्कि उसे नाटकीय रूप से प्रस्तुत करना भी चाहता है।

नाटक वर्तमान काल की एक महत्वपूर्ण विधा है और इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी घटनाएँ दर्शकों की आँखों के सामने घटित होती हैं। नाटक में कार्य व्यापार की गतिशीलता आवश्यक समझी जाती है। इसमें पर्दा उठने से लेकर पर्दा गिरने तक गति बनी रहती है।

भाषा-शिक्षण के संदर्भ में भी नाटक एक विशेष रूप से प्रयोग में लाया जा सकता है। इसका मूल कारण है कि बच्चे स्वयं नाटक के संवादों को अपनी शैली में उच्चारित करते हैं जिससे उनमें शब्दों की समझ के साथ-साथ उनके उच्चारण तथा उनके सही अर्थ का भी ज्ञान होता है। इसी संदर्भ में नीचे कुछ ऐसी विशेषताएँ प्रस्तुत हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा शिक्षण हेतु नाटक कितना उपयोगी है।

विचारों का विकास

शब्दों के स्पष्ट ज्ञान से बच्चों में तर्क शक्ति मज़बूत होती है। उनमें सोचने समझने का विकास होता है। नाटक में घटित हो रही घटनाएँ उनके मन में कल्पनाओं के संसार का निर्माण करती हैं। बालक नाटक को सत्य मान कर उसे ही वास्तविक जीवन समझने लगता है और भाषा उसकी कल्पना की इस उड़ान को पंख देती है।

बालकों का चरित्र विकास

विचारों के पश्चात् एक निश्चित मार्ग पर चल सकने की शक्ति को चरित्रबल कहते हैं। बच्चों का मन विचारों का अड्डा होता है। यही इच्छाएँ मन को चंचल कर मन को स्थिर नहीं रहने देतीं। भाषा बच्चों के चरित्र का भी निर्माण करती है। बच्चों को यदि आरंभिक वर्षों में ही, जब वे अनुकरण की स्थिति में होते हैं, उन्हें सही शब्दों एवं उनके उच्चारण से परिचय

* एफ़-4/1654, ट्रांजिट कैम्प, आनंद पर्वत, दिल्ली 110005

कराया जाना चाहिए। इस संदर्भ में नाटक बच्चों में भाषा की पहचान और उनके चरित्रों के निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। नाटक में पात्रों के बीच संबंध और संवाद उन्हें यह बोध कराते हैं कि 'तुम' और 'आप' का वर्गीकरण किस प्रकार करना है।

बालक की इच्छाओं की तृप्ति

बालक की इच्छाएँ बड़े गज़ब की होती हैं जिनका ज्ञान प्रौढ़ों को नहीं होता क्योंकि उनकी सोच बालक की सोच से बहुत भिन्न होती है। हम प्रायः अपने हिसाब से बालक को नापते हैं। जो हम अनुचित समझते हैं वह बालक के लिए भी बुरा समझते हैं। हम उन पर नैतिक विचार लादने की कोशिश भी करते हैं। बालक की साधारण इच्छा भी हम बलपूर्वक दबा देते हैं। नाटक उनकी इन्हीं इच्छाओं की पूर्ति में सहायता करता है। नाटक के संवाद और शब्द बच्चों की आत्माभिव्यक्ति को प्रकट करते हैं। नाटकों के माध्यम से बच्चों को अपनी इच्छाओं को प्रस्तुत करने तथा अपनी झिझक व संकोच को त्याग, खुल कर अपनी बात कहने का अवसर मिलता है। बच्चे नाटक की आसान भाषा व आसान मुहावरों के साथ अपनी स्थिति, व्यथा एवं भावों को अपने अभिभावकों व अध्यापकों के समक्ष प्रस्तुत कर पाते हैं।

'वक्त की आवाज़' नाटक में लेखक बच्चों के मुँह से कहलवाते हैं.... "आप तो हमसे बड़े हैं। हम कोई गलती करते हैं तो आप हमें पीटते हैं। अब आप जो गलत कर रहे हैं, उसकी सज़ा आपको हम दे तो नहीं सकते, केवल इतना कह सकते हैं कि कुछ हमसे ही सीखिए।" एक प्रकार से कहा जाए तो नाटक बच्चों की भावनाओं को भाषा की ज़ुबान देता है जिससे वे अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर पाते हैं।

अच्छे संस्कारों का जन्म

नाटक बच्चों में केवल समझ ही उत्पन्न नहीं करता बल्कि यह उनमें संस्कारों का भी निर्माण करता है। कुछ धार्मिक नाटकों एवं एकांकियों के माध्यम से बच्चों में भारतीय संस्कृति के प्रति जागरुकता तथा उनके प्रति आदर व सम्मान का भाव भी उत्पन्न होता है। नाटक बच्चों को संस्कारित भाषा प्रदान करता है जिससे उनमें बड़ों के प्रति आदर व सम्मान का भाव जागृत होता है। 'बाल रामायण', 'हिरण्यकश्यप', 'बाल हनुमान' 'बाल कृष्णा', आदि नाटक बच्चों में धार्मिक भाव व सांसारिक गुणों का भी विकास करते हैं।

ज्ञान वृद्धि और विचार विकास

कहा जाता है कि मूर्ख व्यक्ति का सदाचारी होना संभव नहीं, क्योंकि ज्ञान का ही दूसरा रूप सदाचार है। ज्ञान दो प्रकार का होता है – सांसारिक और आध्यात्मिक। दोनों का ज्ञान बालक के चरित्र विकास में सहायक होता है। इस कारण बालक को अपने देश, जाति और समाज का ज्ञान कराना आवश्यक होता है। बाल नाटक बच्चों में देश, जाति और समाज संबंधित ज्ञान को विकसित करने में सहायता प्रदान करते हैं।

आज बच्चों के लिए बाल रंगमंच मुक्त रूप धारण कर चुका है क्योंकि पहले दशकों की तुलना में आज वह अपनी पसंद और इच्छानुसार अभिनय करने, बोलने और गाने-नाचने की पूरी छूट ले चुका है। आज ऐसे भी नाटक लिखे जा रहे हैं जिनमें न वेशभूषा की बंदिश है और न पर्दा उठाने-गिराने का झंझट।

साथ ही लंबे-लंबे संवाद रटने के स्थान पर आज के नाटकों के कथानकों में सामान्य बोलचाल वाली भाषा का प्रयोग किया जाता है जिसे बच्चे अपने रोज़मर्रा के क्रियाकलापों में प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त इन नाटकों के कथानक बच्चों के अपने कथानक होते हैं, और शब्दों का चयन बच्चों के आस-पास के परिवेश में बोले-सुने जाने वाले शब्दों में से किया जाता है, ताकि बच्चे नाटक में प्रयोग किए गए शब्दों को अपने निजी परिवेश में भी आसानी से प्रयोग कर पाएँ। उदाहरण के लिए–

1. जैसे सीढ़ी हो महल की
या सीढ़ी ऊँचे मंदिर की
पर्वत ढल तानों की खेती
नीचे से ऊपर तक जाती
हरी भरी पर्वत की खेती

2. छिक! छिक! छिक! छिक!
छुक! छुक! छुक! छुक!
छनन! छनन! छनन! छनन!
झटपट! झटपट! खटपट! खटपट!
झटपट! झटपट! खटपट! खटपट!

3. "हमारे सामने उन कुत्तों ने बम को पटरी पर रखा और यह पटरी से यों चिपक गया जैसे धरती से अंगद का पाँव।"

इस प्रकार नाटकों के माध्यम से बच्चों में भाषागत ज्ञान में वृद्धि होती है। कथा की भाँति नाटक के कथोपकथन पाठक में एक साधारण गुदगुदी के साथ उत्सुकता बढ़ाते हैं। वाक्यों के लचीलेपन से स्वयं पाठक बँध जाता है –

आओ बच्चों, तुम्हें सुनाएँ
बात आज की नहीं, कथा है
बहुत पुरानी, बहुत पुरानी।
****
क्या बकता है कनुए नाई
क्या तेरी है शामत आई?

इस प्रकार इन नाटकों में कथा हो चाहे पात्र या कथोपकथन – इनकी जीवंतता बच्चों पर अधिक समय तक अपना असर छोड़ेगी। इनमें प्रयोग किए गए संवाद बच्चों के मस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ते हैं।

भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्दों का ज्ञान

चुटकुले

चुटकुले बच्चे बहुत पसंद करते हैं, क्योंकि वह उन्हें हँसाते हैं, गुदगुदाते हैं। नाटक में प्रवाह लाने तथा नीरसता कम करने हेतु नाटककार चुटकुले एवं मुहावरेदार भाषा व शब्दों का प्रयोग करता है और बच्चे इन्हीं मुहावरों व चुटकुले आदि का संवाद प्रस्तुति के समय प्रयोग करते हैं। चुटकुला शब्द 'चुट' और 'कुला' दो शब्दों के योग से बना है। 'चुट' का अर्थ है चुटकी – बच्चों में एक-दूसरे की चुटकी काटने से नहीं जिससे दर्द होता है बल्कि उस मुहावरे से है जिसे 'चुटकी लेना' कहते हैं। यहाँ चुटकी का अर्थ है मज़ाक बनाना या हँसाना। दूसरा शब्द 'कुला' कुलेल से बना है। कुलेल माने गुदगुदी। इस प्रकार चुटकुला का अर्थ हुआ गुदगुदाने वाली चुटकी। इस कारण रेडियो और दूरदर्शन के बाल कार्यक्रमों में चुटकुलों को अवश्य स्थान दिया जाता है। इनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता के कारण इसे पाठ्यपुस्तकों के स्तर पर भी अनुभव किया जाने लगा। *हँसिए हँसाइए, बीरबल*

की खिचड़ी, बीरबल की बातें, शामत आना, अकल की टंकी नौटंकी, बगुला भगत, चुहिया कुमारी जी, काका कौव्वा, चंचल बंदर, कानुआ नाई, तमाशा, ठग ठग गए, हम तो हुए टीचर, धूर्ताचार्य का औषधालय, चूहे के पेट में चूहे कूदे, जंगल में कवि सम्मेलन, हिरण्यकश्यप मर्डर केस, नटखट कृष्ण आदि बाल नाटकों के माध्यम से बच्चों में चुटकुलों की रसानुभूति होती है। इन नाटकों में चुटकुले एवं मुहावरेदार शब्दों का प्रयोग किया गया है जो कि बच्चों के आसपास के वातावरण से जुड़े होते हैं–

शब्दों में चमत्कार वाले चुटकुले
ज़रा खोल लो अक्ल की टंकी।
अब न लगाना कोई फ़ंकी ।
चुन ही रख लो अपनी अंटी।

सामान्य ज्ञान के चुटकुले
हिम्मत और अक्ल से मिल के
बिगड़े काम बन सकते हैं।

चतुराई भरे चुटकुले
मास्टर जी – रमेश, एक और मुर्गा कुतुब मीनार पर बैठा था। उसने एक अंडा गिराया पर ज़मीन पर गिरकर भी अंडा नहीं फूटा, क्यों?
रमेश – जी, मुर्गा अंडा नहीं देता।

इस प्रकार के चुटकुले आदि से बच्चों में भाषिक समझ के साथ-साथ मानसिक बुद्धि का भी विकास होता है।

पहेलियाँ

पहेलियाँ बच्चों में नई सोच और नई संवेदना उजागर करती हैं और उन्हें कल्पना लोक में विचरने में सहायता करती हैं, जैसे – *स्वर्ग से बुलावा, धर्मखाता, सौगात, किंकर्तव्यविमूढ़, धरम-करम, धूर्त, ज़मीन को छूना, दम निकल जाएगा, मरम्मत, साँस भी कंजूसी से लेना, जुएँ भी हाथी पालने के बराबर, नाच-तमाशा, बागडोर, भविष्य को भूत डसना, कुएँ में आग लगाना, ऊटपटाँग, लघुपतनक, कलचितिया, हाथीमल, राधा के नंदलाल, चालू किस्म, चटोरेपन* आदि पहेलियाँ शब्द विशेष पर ही दिखाई देती हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ पहेलियाँ वाक्य रूप में अपना एक विशेष अर्थ प्रस्तुत करती हैं –

1. नाक कान पर करे निवास,
   दूर को लावे पास (*चश्मा*)
2. एक कोठरी चालीस चोर,
   आग लगा दे चारों ओर। (*माचिस*)
3. टेढ़ी-मेढ़ी गली, रस से भरी (*जलेबी*)

इस प्रकार पहेलियों में भावों का ऐसा चमत्कार देखने को मिलता है जिसे सुनकर बच्चे एकाएक खिल उठते हैं और तुरंत याद कर लेते हैं।

मैथिली
चार चिरईया चार रंगा चारों बेद रंग।
पिंजरा में रख देला, चारों एक्के रंगा।। (*पान*)

भोजपुरी
हती मुट्ठी गाजीमियाँ, हतवत पोंछि।
इहे जाल गाजीमियाँ, धरि है पोंछि।। (*सुई-धागा*)

अतः इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग से बच्चों में अन्य भाषाओं के शब्दों सहित देशज शब्दों की भी समझ विकसित होती है। इन संवादों की भाषा इतनी सहज व सरल होती है कि बच्चे आसानी से याद रख पाते हैं तथा खेल-खेल में गुनगुनाते भी रहते हैं।

अध्यापकों हेतु सुझाव

- प्रारंभिक स्तर पर बच्चों का मस्तिष्क अनुकरण की अपार शक्ति से भरपूर होता है। शिक्षकों को चाहिए कि उनके समक्ष तथा उनके माध्यम से

नाटकों का आयोजन करें और बच्चों को भी उसमें सहभागिता हेतु प्रोत्साहित करें।

- नाटकों को प्रदर्शित करने से पूर्व अथवा कक्षा में नाट्य पाठ के समय बच्चों से उनमें प्रयुक्त शब्दों के बारे में बातचीत करें तथा उनका सही उच्चारण व अर्थ समझाएँ।
- नाटक चाहे प्रदर्शित करना हो अथवा कक्षा में पाठ करवाना हो, अध्यापक को चाहिए कि वे संवादों की लयात्मकता पर ज़ोर दें। लयात्मकता के माध्यम से बच्चे नाटक में प्रयुक्त कठिन शब्दों का भी आसानी से उच्चारण कर पाते हैं तथा लंबे समय के लिए वह शब्द उनके मस्तिष्क में सुरक्षित हो जाता है।
- कक्षा में बच्चों से नाट्य पाठ क्रियात्मक शैली में करवाया जाना चाहिए। बच्चों में नाटक के पात्रों को बाँट कर उन्हें पात्र के व्यक्तित्व के अनुसार संवाद पढ़ने पर बल दिया जाना चाहिए। इसके साथ-साथ अन्य बच्चों में भी इन पात्रों का बँटवारा करते रहना चाहिए। इसके माध्यम से बच्चों में नाटक के प्रति उत्सुकता और आकर्षण पैदा होता है। बच्चे नाटक को एक खेल मानने लगते हैं और उनका मन कक्षा में लगा रहता है।
- नाट्य प्रदर्शन अथवा नाट्य पाठ के पश्चात् अध्यापक को चाहिए कि वे बच्चों से नाटक संबंधित प्रतिक्रिया लें। अमुक नाटक से उन्हें क्या सीख मिली? नाटक में किस प्रकार की भाषा का इस्तेमाल किया गया? किन शब्दों को बोलने में उन्हें कठिनाई महसूस हुई? नाटक में प्रयुक्त मुहावरेदार संवाद व शब्दों के वास्तविक अर्थ क्या हैं अथवा नाटक में किस अर्थ का बोध कराते हैं? व्याकरणिक स्तर पर नाटक में संज्ञा, सर्वनाम आदि क्या-क्या हैं?.... आदि।
- नाट्यकला बच्चों में सहयोग तथा टीम वर्क की भावना को जागृत करती है। अतः विद्यालय में समय-समय पर बाल नाट्य महोत्सव का आयोजन किया जाना चाहिए जिसमें बच्चों को उनकी क्षमता एवं रुचि के अनुसार सहभागिता दी जानी चाहिए।

नाटक मूल रूप से व्यक्ति को खुद से जोड़े रखता है और इसी संदर्भ में यह बच्चों के लिए एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में पहचाना जाता है। नाटकों का मुख्य ध्येय बच्चों में आचरण सिद्धांतों को लाना, मानव स्वभाव और मानव चरित्र का अध्ययन कराना, भावों को व्यक्त कराना, संपर्क दृष्टि से उच्चारण करना, भाषागत शब्दों की पहचान करना आदि है। नाटकों के माध्यम से बच्चों में भाषागत ज्ञान और शब्दकोश में बढ़ोतरी होती है। अतः कक्षा एवं विद्यालयों में नाटकों का मंचन विद्यार्थियों के लिए एक महत्वपूर्ण क्रियाकलाप के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

ग्रंथ सूची

प्रगल्भ, राधेश्याम. 1979(क). *खोखला सिक्का*. शकुन प्रकाशन, नयी दिल्ली.

——— 1979(ख). *शनिलोक*. शकुन प्रकाशन, नयी दिल्ली.

शुक्ल, लालजीराम. 1952. *बाल मनोविकास*. नंदकिशोर एंड ब्रदर्स प्रकाशन, वाराणसी.

साहनी, संतोष. 1990. *बाल संसार समग्र*. प्रचारक ग्रंथावली, वाराणसी.

8

भाषा के विकास में कठपुतली के खेलों का महत्त्व

पूनम*

भाषा मनुष्य के भावों और विचारों को व्यक्त करने का एक माध्यम है। व्यापक अर्थ में हम किसी भी प्रकार से भाव और विचार को व्यक्त करने की प्रणाली को भाषा कहते हैं। अर्थात् भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त ध्वनि समूहों के संयोजन को ही भाषा कहते हैं।

कठपुतलियाँ भाषा कौशलों, सुनना, बोलना, लिखना एवं पढ़ना के लिए एक मूल्यवान साधन हैं जो कि भीड़ में सभी के सामने बोलने का आत्मविश्वास प्रदान करती हैं। इसलिए पुरातन से लेकर वर्तमान तक कठपुतली अभिनय को शिक्षण का सबसे उत्तम एवं महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। लेखिका स्वयं एक नर्सरी अध्यापिका है जिसने यह स्वयं अनुभव किया है कि कठपुतली के खेल में बच्चों को आनंद की प्राप्ति होती है। जो पाठ सीखने में बच्चों को घंटों लग जाते हैं वह कठपुतली के माध्यम से मिनटों में सीख जाते हैं। क्योंकि अभिनय से बच्चों का मनोरंजन होता है। साथ ही वे इतने जिज्ञासित होते हैं कि बार-बार प्रश्न पूछते हैं जोकि मौखिक कौशल के विकास में सहायक सिद्ध होता है। कठपुतलियों के माध्यम से कहानी व कविता सुनने में बच्चों की रुचि इतनी अधिक होती है कि वह आसानी से गीतों को कंठस्थ कर लेते हैं। इस प्रकार से बच्चों के शब्द भंडार में भी वृद्धि होती है। यहाँ तक कि यह भी देखा गया है कि कठपुतली प्रयोग द्वारा बच्चों में अपने स्वयं के विचारों को व्यक्त करने की योग्यता उत्पन्न होती है। बच्चों में इतना आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाता है कि वह कहीं भी कभी भी व किसी के भी सामने स्वत्रंत रूप से अपने विचार व्यक्त करने लगते हैं।

कठपुतली खेल एक प्रकार के नाटक हैं जिसमें कठपुतलियों का प्रयोग करके उन्हें किसी वस्तु, जानवर या इंसान का रूप दिया जाता है और एक सार्थक संदेश या मनोरंजन के लिए उपयोग में लाया जाता है। इस कला को ही कठपुतली खेल का नाम दिया जाता है। कठपुतलियाँ कई प्रकार की होती है, जैसे – अँगुली, छड़, धागा कठपुतली आदि। कठपुतली खेल में हाथ, बाजू या धागों का प्रयोग कर कठपुतलियों को चलाया या घुमाया जाता है तथा उनकी दिशा एवं हाव-भाव सुनिश्चित किए जाते हैं। जिसके कारण कठपुतलियों के पूर्ण शरीर के विभिन्न अंग, जैसे – हाथ, मुँह, सिर आदि बोलते एवं बात करते हुए प्रतीत होते हैं। कठपुतली खेल में पूर्णत: चरित्र के अनुरूप वाक्यों को बोला जाता है जिसमें उसके हाव-भाव एवं संकेत सम्मिलित होते हैं और सार्थक संदेश को बहुत ही आसानी से एक समूह या बच्चों को पहुँचाया जा सकता है।

* *शिक्षिका,* आई.आई.टी., नर्सरी स्कूल, हौज़खास, नयी दिल्ली

भाषा सीखने का स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक क्रम होता है – सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना। बालक में भाषा सीखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। भाषा का विकास मूलत: जीवन की प्रारंभिक अवस्था से ही आरंभ हो जाता है जो मूलत: अनुकरण एवं अभ्यास द्वारा अर्जित की जाती है। मुख्यत: भाषा विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बच्चा किसी भी परिस्थिति को समझकर संप्रेषण करता है। इसलिए भाषा का अपना महत्त्व है। बच्चे भाषा मुख्यत: निम्न प्रकार से सीखते हैं–

- अपने आस-पास के लोगों की नकल करके।
- अपने आस-पास के लोगों का प्रोत्साहन पाकर।
- विचारों और भावनाओं को सुनकर तथा उनकी अभिव्यक्ति करके।

भाषा का दिनचर्या में एक विशेष महत्त्व है जिसके माध्यम से अपने विचारों का आदान-प्रदान बहुत ही सरलता से किया जा सकता है। भाषा संपर्क, अनुकरण और अभ्यास द्वारा अर्जित की जाती है और इसका अपना एक महत्त्व होता है –

इच्छाओं और आवश्यकताओं की संतुष्टि

भाषा बच्चों को अपनी आवश्यकता, इच्छा व मनोभाव दूसरों के समक्ष व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करती है। अन्य व्यक्ति सरलता से उनकी आवश्यकताओं को समझकर समाधान प्रदान करता है।

ध्यान आकर्षित करने के लिए

मुख्यत: सभी बच्चे चाहते हैं कि लोग उनकी ओर ध्यान दें इसलिए वह अभिभावकों से प्रश्न पूछकर या कोई समस्या प्रस्तुत करके ध्यान अपनी ओर खींचते हैं। इस प्रकार भाषा के माध्यम से लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है।

विचार-विनिमय के सरलतम एवं सर्वोत्तम साधन के रूप में

भाषा विचार-विमर्श करने का सबसे सरलतम एवं सुगम साधन है। बालक जन्म के कुछ समय पश्चात् परिवार में रहकर भाषा सीखने लगता है जो कि उसके एवं उसके परिवार के बीच समन्वय स्थापित करती है। भाषा के कारण ही बच्चा अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से प्रकट कर पाता है।

भाषा शिक्षण की बहुत-सी प्रचलित विधियाँ हैं जिसमें कठपुतली का खेल अपना विशेष स्थान रखता है। इसमें अँगुली में पहनी जाने वाली, दस्तानों वाली और छड़ कठपुतलियाँ मुख्य हैं। कठपुतली का जादुई संसार बड़ा ही रंग-रंगीला है। इनकी सहायता से निरक्षर व्यक्ति भी श्रवण के माध्यम से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। चूँकि कठपुतली का खेल सदियों पुराना है। परंतु यह आज भी सभी संस्कृतियों में अलग-अलग उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल की जाती हैं। कठपुतली का खेल एक प्रकार का नाटक होता है। इसमें बहुत-सी कठपुतलियों को हाव-भाव एवं शब्द दिए जाते हैं जिसके माध्यम से समाज को संदेश दिया जा सकता है। कठपुतलियों का प्रयोग समाज में मनोरंजन एवं परंपराओं जैसे, त्योहार मनाना आदि के लिए किया जाता है परंतु सबसे अधिक कठपुतलियों का प्रयोग कहानी सुनाने के लिए किया जाता है।

कठपुतली के खेलों का प्रभाव मुख्यत: उसके सही इस्तेमाल पर निर्भर करता है। कठपुतली का खेल शिक्षण को मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्धक भी बना सकता है क्योंकि यह बच्चों व बड़ों दोनों को ही अपनी ओर आकर्षित करता है। बच्चे इन कठपुतलियों की कहानियों को अपनी कहानी से जोड़ते हैं और उनमें मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। कठपुतली के सही प्रयोग द्वारा हम

कविता, कहानी, पहेली, नैतिक मूल्यों, देश व मानव प्रेम जैसी भावनाओं को प्रभावशाली व स्मरणीय बना सकते हैं। इस प्रकार से शिक्षण में कठपुतलियों का प्रयोग एक अहम स्थान रखता है। इसके अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे महत्त्व हैं जो विकास चक्र में सहायक सिद्ध होते हैं, जैसे–

कल्पना शक्ति को प्रोत्साहित करना

कठपुतली के खेलों द्वारा बच्चों की कल्पना शक्ति का सृजनात्मक विकास होता है। जीन पियाजे के अनुसार कठपुतली के इस्तेमाल द्वारा बच्चे अपनी कल्पनाओं से अपनी कठपुतलियों को नाम देते हैं, उनसे बातें करते हैं तथा उनके लिए कहानी तैयार करते हैं। इससे उनके छिपे हुए भाव अभिव्यक्त होते हैं और यह सभी क्रियाएँ बच्चों के मानसिक विकास में मददगार सिद्ध होती हैं। साथ ही बच्चे अपनी काल्पनिक दुनिया व वास्तविकता से परिचित हो पाते हैं।

संवेगात्मक विकास

कुछ बच्चे स्वभाव से शर्मीले होते हैं तो कुछ दूसरों से अलग रहना पसंद करते हैं। ऐसे बच्चों के लिए कठपुतली "दोस्त" का काम करती हैं तथा उनके संप्रेषण में आने वाली बाधाएँ दूर होती हैं। बच्चा उन पर विश्वास करता है तथा नि:संकोच होकर अपने भावों को अभिव्यक्त करता है और उनमें आत्मविश्वास पैदा होता है।

माँसपेशियों का विकास

कठपुतली को चलाने के लिए माँसपेशियों के समन्वय की आवश्यकता होती है। कठपुतली चाहे हाथ की हो या अँगुली की, उसके लिए माँसपेशियों का समन्वय आवश्यक है, जैसे – कठपुतली को उठाना, पकड़ना, पहनना आदि। कठपुतली को अँगुली में पहनकर जब बच्चा चलाता है तो उससे बच्चे की सूक्ष्म माँसपेशियाँ विकसित होती हैं और उसे आनंद की प्राप्ति होती है।

बोलने व सुनने के कौशल का विकास

कुछ बच्चे अकसर अपने सहपाठियों व अभिभावकों के सामने बोलना पसंद नहीं करते हैं। यदि अभिभावक व शिक्षक शिक्षण के लिए कठपुतली की कहानियों को बच्चों की दिनचर्या की कहानी से जोड़ते हैं तो बच्चों का अधिगम और भी प्रभावी हो जाता है तथा बच्चे कठपुतली की बातों एवं वाक्यों को और भी रुचिपूर्वक सुनते हैं। उनके बोलने एवं सुनने के कौशल में वृद्धि होती है। कठपुतली नाचना, गाना, गुनगुनाना, रोना, हँसना आदि सभी संवेगों को प्रस्तुत करती है और बच्चे उनकी बातें ध्यान से सुनते हैं जो सुनने के कौशल को विकसित करता है और उनके शब्द भंडार में वृद्धि करता है। इसके अतिरिक्त जब बच्चा इन कठपुतलियों का प्रयोग कर अपने विचार प्रस्तुत करता है तो उसके आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है।

समस्या समाधान में सहायक

कठपुतली खेल के माध्यम से बच्चों की समस्याओं का समाधान भी किया जा सकता है। बच्चों का गुस्से पर काबू न पाना, दूसरों के प्रति नम्र न होना, दूसरों की मदद न करना आदि समस्याओं को शिक्षक व अभिभावक कठपुतली के खेल द्वारा बहुत ही आसानी से सुलझा पाते हैं क्योंकि बच्चे दूसरों से अधिक कठपुतली की बातों को ध्यान से सुनते हैं और उन पर विश्वास भी करते हैं।

समूह में सहभागिता

कठपुतली के खेल में बच्चे एक समूह में कार्य करते हैं और एक-दूसरे को बराबर सहभागी बनाते हैं। सभी इसमें मिल-जुलकर कार्य करते हैं और समूह में कार्य करने को भी प्रेरित होते हैं।

कठपुतली खेल के लिए ध्यान रखने योग्य बातें

- कहानियों का चुनाव बच्चों की आयु और रुचि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए, जैसे– बच्चे जानवरों की कहानियाँ सुनना अधिक पसंद करते हैं।
- अभिनय में किसी भी प्रकार की कठपुतली का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे–अँगुलियों, दस्तानों वाली या छड़पुतलियाँ आदि। यह आवश्यक नहीं है कि कठपुतलियाँ अधिक महँगी हों।
- कहानियाँ बहुत अधिक विस्तृत एवं लंबी नहीं होनी चाहिए क्योंकि बच्चों का ध्यान केंद्रण अधिक नहीं होता। वह एक स्थान पर अधिक समय तक बैठकर कहानी नहीं सुन सकते हैं।
- कहानी की भाषा स्पष्ट और सरल होनी चाहिए। उसमें इस्तेमाल होने वाले शब्द बच्चों की दिनचर्या से संबंधित होने चाहिए, जैस – "पानी" शब्द के स्थान पर "जल" का प्रयोग।
- कठपुतली प्रदर्शन से पहले शिक्षकों को कहानी भली-भाँति समझ लेनी चाहिए एवं संचालन से पहले उसका अभ्यास भी कर लेना चाहिए।
- बच्चों के बैठने की व्यवस्था उपयुक्त होनी चाहिए। शिक्षिका को सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रत्येक बच्चा ध्यानपूर्वक अभिनय देख और सुन सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि कठपुतली का प्रदर्शन बहुत दूरी पर और बहुत ऊँचाई पर ना हो।
- कठपुतली का अभिनय बच्चों की आँखों के स्तर के अनुरूप होना चाहिए ताकि बच्चे उसे आसानी से देख सकें।
- कठपुतलियों का आकार बड़ा होना चाहिए ताकि सभी बच्चे उन्हें आसानी से देख सकें।
- कठपुतलियाँ रंग-बिरंगी होनी चाहिए, क्योंकि रंग-बिरंगी चीज़ें बच्चों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।
- अभिनय के दौरान शब्दों का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए अन्यथा बच्चों का उच्चारण भी अस्पष्ट होगा।
- कठपुतली अभिनय के लिए विद्यालय में कठपुतली स्टैंड होना चाहिए। यदि स्टैंड उपलब्ध न हो तो परदे को दोनों ओर से बाँधकर अभिनय किया जा सकता है।
- अभिनय के बाद बच्चों से प्रश्न पूछने चाहिए। इससे पता चलता है कि बच्चों ने कहानी ध्यानपूर्वक सुनी है या नहीं।
- सप्ताह में एक बार कठपुतली का अभिनय अवश्य करवाना चाहिए। इससे बच्चों में विद्यालय के प्रति लगाव उत्पन्न होता है और वह विद्यालय आने को प्रेरित होते हैं।

- कठपुतलियों की बनावट स्पष्ट और सुंदर होनी चाहिए जिससे बच्चे उनकी ओर आकर्षित हों और उनको आसानी से पहचान सकें।

निष्कर्ष

भाषा हमारे चिंतन-मनन व ज्ञान का आधार है। क्योंकि भाषा विचारों के आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाषा की महत्ता जानने से उसके शिक्षण की आवश्यकता का ज्ञान हो जाता है। मानव विकास में भाषा का सर्वाधिक योगदान है। भाषा का असली रूप वही है जिसे एक मानव समुदाय बोलता और सुनता है। मनुष्य संप्रेषण के लिए सबसे अधिक जिस माध्यम का सहारा लेता है, वह है भाषा। भाषा के द्वारा बोलकर या लिखकर अपने मन के भाव या विचार दूसरों तक पहुँचाए और ग्रहण किए जा सकते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कठपुतली का खेल भी शिक्षण एवं भाषा विकास का एक अभिन्न अंग है जिसके द्वारा बच्चों को सुनने, बोलने, लिखने तथा पढ़ने के लिए तैयार किया जाता है जो आगे जाकर भावी जीवन का आधार बनते हैं।

शिक्षा में सूचना और जनसंचार प्रौद्योगिकी का उपयोग

पारस यादव*

प्रस्तावना

लोकसंपर्क या जनसंपर्क या जनसंचार से तात्पर्य उन सभी साधनों के अध्ययन एवं विश्लेषण से है जो एक साथ बहुत अधिक जनसंख्या के साथ संचार संबंध स्थापित करने में सहायक होते हैं। प्राय: इसका अर्थ सम्मिलित रूप से समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, दूरदर्शन, चलचित्र और अब इंटरनेट से लिया जाता है जो समाचार एवं विज्ञापन दोनों के प्रसारण के लिए प्रयुक्त होते हैं।

जनसंचार माध्यम में संचार शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चर' धातु से हुई है जिसका अर्थ है– 'चलना'।

जनसंचार का अर्थ बड़ा ही व्यापक और प्रभावकारी है। कृषि, उद्योग, व्यापार, जनसेवा और लोकरुचि के विस्तार के लिए भी लोकसंपर्क की आवश्यकता है।

प्राचीन काल में लोकमत को जानने अथवा लोकरुचि को सँवारने के लिए जिन साधनों का प्रयोग किया जाता था वे आज के वैज्ञानिक युग में अधिक उपयोगी नहीं रह गए हैं। एक युग था जब राजा लोकरुचि को जानने के लिए गुप्तचर व्यवस्था पर पूर्णत: आश्रित रहता था तथा अपने निदेशों, मंतव्यों और विचारों को वह शिलाखंडों, प्रस्तरमूर्तियों, ताम्रपत्रों आदि पर अंकित कराकर प्रसारित किया करता था।

धीरे-धीरे आधुनिक विज्ञान में विकास होने से साधनों का भी विकास होता गया और अब ऐसा समय आ गया है जब जनसंचार के लिए समाचारपत्र, मुद्रित ग्रंथ, लघु पुस्तक-पुस्तिकाएँ, प्रसारण यंत्र (रेडियो, टेलीविज़न), चलचित्र, ध्वनिविस्तारक यंत्र आदि अनेक साधन उपलब्ध हैं। इन साधनों का व्यापक उपयोग राज्यसत्ता, औद्योगिक और व्यापारिक प्रतिष्ठान तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के द्वारा होता है।

वर्तमान युग में जनसंचार के सर्वोत्तम माध्यम का कार्य समाचारपत्र करते हैं। इसके बाद रेडियो, टेलीविज़न, चलचित्रों और इंटरनेट आदि का स्थान है। नाट्य, संगीत, भजन, कीर्तन, धर्मोपदेश आदि के द्वारा भी जनसंचार का कार्य होता है।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी

भारत एक सफल सूचना और संचार प्रौद्योगिकी से युक्त राष्ट्र होने के नाते सदैव सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग पर अत्यधिक बल देता रहा है, न केवल अच्छे शासन के लिए बल्कि अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों, जैसे – स्वास्थ्य, कृषि और शिक्षा आदि के लिए भी। हाल ही के वर्षों में इस बात में काफ़ी रुचि रही है कि सूचना और संचार प्रौद्योगिकी

* *छात्र*, बी.ए. प्रथम वर्ष (पत्रकारिता एवं जनसंचार), एमिटी विश्वविद्यालय, नोएडा (उ.प्र.)

को शिक्षा के क्षेत्र में कैसे उपयोग किया जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदानों में से एक है। प्रौद्योगिकी अधिगम्यता को आसान बनाती है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की सहायता से शिक्षार्थी अब ई-पुस्तकें, परीक्षा के नमूने वाले प्रश्न पत्र, पिछले वर्षों के प्रश्न पत्र आदि देखने के अलावा संसाधन व्यक्तियों, मेंटोर, विशेषज्ञों, शोधकर्ताओं, व्यावसायिकों और साथियों से दुनिया के किसी भी कोने पर आसानी से संपर्क कर सकते हैं।

समय के साथ-साथ लोगों की जीवन शैली में परिवर्तन हुआ है। उन सभी लक्ष्यों के लिए कम समय लगता है जो हम पूरे करना चाहते हैं तथा एक साथ बहुत सारे कार्य पूरे करना जीवन का तरीका बन गया है। हम में से अनेक लोग अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते हैं किंतु कभी-कभी समय की सीमाओं के कारण पढ़ाई जारी रखना कठिन हो जाता है। इसलिए कई लोग और शिक्षार्थी दूरस्थ शिक्षा पाठ्यक्रमों के माध्यम से पढ़ने का विकल्प अपनाते हैं, जिससे वे अपनी शिक्षा आराम से जारी रख सकें।

ऑनलाइन किताबें

शिक्षार्थी और शिक्षक एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित अब सभी विषयों की कक्षा 1 से 12 तक की पाठ्यपुस्तकें डाउनलोड कर सकते हैं और उन्हें बाज़ार में उनकी उपलब्धता के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है और न ही पुस्तक खो जाने पर नई पुस्तक खरीदने की चिंता रहती है।

छात्रवृत्तियों की जानकारी

विभिन्न पृष्ठभूमियों और वित्तीय स्थिति से आने वाले प्रतिभावान शिक्षार्थियों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा अनेक छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम तथा योजनाएँ चलाई जाती हैं। प्रौद्योगिकी से अब शिक्षार्थियों को योग्यता-आधारित छात्रवृत्ति परीक्षाओं; जैसे– राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा, ओलंपियाड आदि के बारे में जानकारी पाना और उसमें आवेदन करना आसान हो गया है। बच्चे विद्यालय और परीक्षा की फ़ीस भी अब कंप्यूटर की सहायता से जमा कर सकते हैं जिससे समय की बचत होती है और शिक्षकों को भी पैसा गिनने, हिसाब रखने इत्यादि की चिंता नहीं रहती।

शिक्षा ऋण

शिक्षा ऋण और इससे संबंधित जानकारी पाना किसी समय अत्यंत कठिन कार्य था, किंतु सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की सहायता से इस क्षेत्र में अब जानकारी पाना आसान हो गया है। अब शिक्षा ऋण पाने से संबंधित प्रक्रियाओं, सीमाओं तथा अन्य प्रकार की जानकारी कंप्यूटर के माध्यम से आसानी से प्राप्त की जा सकती है।

विद्यालयी शिक्षा में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग

सब तक पहुँच, सबसे जुड़ाव

विद्यालयी शिक्षा में आजकल ई-पाठशाला यानी इंटरनेट की सहायता से पठन-पाठन प्रक्रिया बहुप्रचलित है। इसका एक लाभ यह है कि दूर बैठे बच्चों, शिक्षकों और अभिभावकों को आवश्यक सामग्री उपलब्ध हो जाती है। ऐसे ही कुछ 'एप्स' का वर्णन आगे किया जा रहा है —

ई-पाठशाला

'डिजिटल भारत' अभियान द्वारा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के व्यापक

उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है। ई-पाठशाला 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' (एम.एच.आर.डी.), भारत सरकार तथा 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्' (एन.सी.ई.आर.टी.) का एक संयुक्त प्रयास है। यह शिक्षा के क्षेत्र में ई-संसाधनों का प्रदर्शन तथा विस्तार करने के लिए विकसित किया गया है, इसमें पाठ्यपुस्तकें, ऑडियो, वीडियो, पत्र-पत्रिकाएँ तथा अन्य मुद्रित एवं अमुद्रित सामग्रियाँ सम्मिलित की गई हैं।

ई-पाठशाला उन दूर-दराज़ के मानव समूहों तक भी पहुँचती है, जहाँ संसाधनों की कमी है तथा भौगोलिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और भाषायी विविधता है। ई-पाठशाला, डिजिटल विविधताओं की चुनौतियों का समाधान गुणवत्तापूर्ण ई-संसाधनों से करती है। ये संसाधन हर समय, हर जगह तथा नि:शुल्क उपलब्ध हैं।

ई-पुस्तकें

आधुनिक युग में उपलब्ध बहु-प्रौद्योगिकी के वरदान; जैसे – मोबाइल फ़ोन, टैबलेट तथा लैपटॉप एवं कंप्यूटर (फ़्लिपबुक) द्वारा विद्यार्थी, शिक्षक, शिक्षाविद् तथा अभिभावक ई-पुस्तकों को प्राप्त कर सकते हैं। ई-पाठशाला आपके मोबाइल की तकनीक और भंडारण क्षमता के अनुसार एक साथ अनेक ई-पुस्तकों तथा अन्य सामग्रियों को उपलब्ध कराने में सक्षम है। ई-पुस्तकों की मुख्य विशेषताएँ हैं –पृष्ठों को चुनना, पृष्ठों को पढ़ना, उन्हें छोटा-बड़ा करना, पाठों को रेखांकित व चिह्नित करना, पाठ खोजना, रात्रि पठन तथा डिजिटल नोट तैयार करना आदि में सहायक है।

एप को डाउनलोड करें

एन.सी.ई.आर.टी. ने एक मोबाइल एप बनाया है जिसे आप एंड्रॉइड, आई फ़ोन ऑपरेटिंग सिस्टम तथा विंडोज़ की सहायता से उपयोग कर सकते हैं। ई-पाठशाला अभी तीन भाषाओं में उपलब्ध है – हिंदी, अंग्रेज़ी और उर्दू।

एप से संबंधित जानकारी आप www.ncert.nic.in, www.epathshala.gov.in, www.epathshala.nic.in से प्राप्त कर सकते हैं।

एप द्वारा आप निम्नलिखित चीज़ों का प्रयोग कर सकते हैं–

1. ई-पुस्तकें – सभी कक्षाओं के लिए डिजिटल पाठ्यपुस्तकों का उपयोग।
2. ई-संसाधन – ऑडियो, वीडियो, इंटरैक्टिव संसाधनों, छवियों, मानचित्रों, प्रश्न संग्रहों आदि का उपयोग।
3. पाठ्यचर्या संसाधन – सभी कक्षाओं के लिए डिजिटल पाठ्यपुस्तकों का उपयोग।
4. शैक्षणिक निर्देश– शैक्षणिक निर्देशों तथा पूरक पुस्तकों का उपयोग।
5. पत्र-पत्रिकाएँ – आवधिक पत्र-पत्रिकाओं का उपयोग करें तथा उनमें अपने आलेखों का योगदान करें।
6. अधिगम परिणाम – अपेक्षित अधिगम परिणाम प्राप्त करने में बच्चों की सहायता।

ई-शिक्षा के अंतर्गत वेब-आधारित शिक्षा कंप्यूटर-आधारित शिक्षा, आभासी अधिगम, एवं डिजिटल सहयोग शामिल हैं। ई-शिक्षा के माध्यम

से पाठ्य समग्रियों का वितरण, इंटरनेट, ऑडियो/वीडियो, टेप, उपग्रह टी. वी. इत्यादि के माध्यम से किया जा सकता है।

ई-शिक्षा का प्रयोग स्वयं या शिक्षक की सहायता से किया जा सकता है। इससे पाठ को रोचक बनाया जा सकता है, चित्रों को एनिमेशन द्वारा दिखाया जा सकता है, स्ट्रीमिंग या ऑडियो/वीडियो का कक्षा में प्रयोग किया जा सकता है। आजकल ई-शिक्षा बहुत प्रचलित है क्योंकि इसके द्वारा अधिगम को रोचक बनाया जा सकता है तथा अधिगम स्तर को बढ़ाया जा सकता है।

ई-शिक्षा अनुसंधान द्वारा पता चलता है कि प्रत्यक्ष पाठ्यक्रम की अपेक्षा ऑनलाइन अध्ययन करने या ऑनलाइन अभ्यास करने वाले शिक्षार्थी का प्रदर्शन बेहतर हो सकता है। ई-शिक्षा का यह फ़ायदा भी है कि बच्चा अपने स्तर से आगे बढ़ कर ज्ञान हासिल कर सकता है। ई-शिक्षा की सुविधा 24 घंटे उपलब्ध रहती है। यदि बच्चा कक्षा में किसी कारणवश अनुपस्थित रहता है तो भी वह ऑनलाइन उपलब्ध सामग्री से पढ़ सकता है तथा अपने साथियों से संपर्क साध सकता है। शिक्षार्थी किसी विशेष निश्चित समय के अधीन नहीं होते। अपनी सुविधानुसार शिक्षा सत्र को रोक भी सकते हैं, इसके लिए बहुत उच्च प्रौद्योगिकी की आवश्यकता नहीं होती। बुनियादी इंटरनेट, ऑडियो/वीडियो के प्रयोग से ही छात्र-छात्राएँ अपने अधिगम स्तर को बढ़ा सकते हैं।

शिक्षा में प्रयोग किए जा रहे तकनीकी साधनों का प्रयोग करके विद्यार्थी अन्य कार्य करते हुए भी अध्ययन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि किसी कारणवश वह कक्षा में नहीं पहुँच पाता तो कक्षा के अन्य बचे हुए कार्यों को वह बिना किसी असुविधा के घर पर अपने खाली समय में पूरा कर सकता है।

शारीरिक अक्षमता वाले बच्चे जो विद्यालय तक पहुँच पाने में असमर्थ होते हैं, अपने घर पर ही ऑडियो/वीडियो आदि के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। ई-शिक्षा ने शिक्षा के आयामों का विस्तार कर इन्हें प्रत्येक बच्चों की पहुँच के लायक बनाया है।

अध्यापकों के लिए भी जनसंचार तकनीकी साधनों की उपयोगिता

कंप्यूटर की सहायता से शिक्षक

1. कक्षा-कक्ष की गतिविधियों को रोचक बना सकते हैं।
2. कक्षा में जिन बच्चों को ठीक से कोई प्रत्यय (concept) समझ नहीं आता तो अध्यापक बच्चों को आसानी से कंप्यूटर में कोई मॉडल या गतिविधि दिखाकर समझा सकते हैं।
3. यदि सीखने की प्रक्रिया में कहीं कोई कमी रह जाती है तो अध्यापक आसानी से उन कमियों का पता लगा कर उसे जल्दी दूर कर सकते हैं।
4. बच्चों की अंक तालिका बनाने में कंप्यूटर द्वारा सहायता मिलती है।
5. ऑनलाइन रिपोर्ट बनाने में कागज़ का खर्च कम होता है, प्रिंटिंग इत्यादि के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता। कंप्यूटर पर ही अंक तालिका बनाई जा सकती है, साथ ही साथ अभिभावकों को समय-समय पर भेजी जा सकती है ताकि अभिभावकों को भी अपने बच्चों के प्रदर्शन की जानकारी मिलती रहे।
6. अध्यापक अपनी डायरी को आसानी से कंप्यूटर पर व्यवस्थित कर सकते हैं। उन्हें कार्यक्रम का नियोजन करने में भी सुविधा रहती है।

7. अध्यापक अभिभावकों से भी ई-मेल, व्हाट्सएप आदि के द्वारा संपर्क में रह सकते हैं। अध्यापक अभिभावकों को बता सकते हैं कि वे कक्षा-कक्ष में क्या पढ़ा रहे हैं एवं आगे क्या पढ़ाने वाले हैं, जिससे अभिभावक भी घर पर बच्चों की तैयारी करने में अपना योगदान दे सकते हैं।
8. अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे बच्चों के साथ-साथ अभिभावकों को भी बच्चों से जुड़े मुद्दों पर जागरूक करें, अतः वे समय-समय पर बच्चों के विकास से संबंधित जानकारी, बच्चे कैसे सीखते हैं, पढ़ने-पढ़ाने की रोचक गतिविधियाँ, पौष्टिक आहार, साफ़-सफ़ाई का महत्त्व एवं शिक्षा में आने वाले नए बदलावों की जानकारी भी दे सकते हैं।
9. यदि बच्चों को किसी प्रकार की कोई शारीरिक या मानसिक परेशानी हो तो उसका हल भी कंप्यूटर में उपलब्ध जानकारी से शिक्षक और अभिभावक निकाल सकते हैं। कंप्यूटर के माध्यम से प्रधानाचार्य, भिन्न-भिन्न विषयों के शिक्षक तथा अभिभावक एक साथ जुड़े रह सकते हैं।
10. यदि विद्यालय में किसी विषय का शिक्षक नहीं है और अभिभावकों में से कोई वह विषय पढ़ा सकता है या कक्षा की गतिविधियों को रोचक बनाने के लिए कोई कहानी, कविता, विज्ञान के परियोजना कार्य करवा सकता है, तो वह भी कंप्यूटर के द्वारा अपने अनुभव को साझा कर विद्यालय की प्रगति में अपना योगदान दे सकता है।
11. कंप्यूटर की सहायता से बच्चों के लिए आकर्षक किताबें तथा सहायक सामग्री इत्यादि अध्यापक बना सकते हैं। अभ्यास के लिए वर्कशीट तैयार कर सकते हैं और आजकल तो कंप्यूटर में उपलब्ध गतिविधियों या खेल, क्रिया आदि को जाँचना अधिक सुलभ हो गया है। पारंपरिक तरीकों के प्रयोग से क्रिया आदि को जाँचने में अधिक समय व श्रम लगता था, जिसे कंप्यूटर ने कम समय की लागत में सरल व सुगम बना दिया है।

इस तरह से सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हुए सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सकता है। इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बिंदु है – आवश्यकतानुसार वैविध्यपूर्ण सामग्री का प्रयोग, सीखने के प्रति रुचि को बढ़ावा देने में सहायक होगा।

बाल कहानी

10

साँप और चींटी

विपुल

बच्चों के लिए भाषा सीखना बहुत आवश्यक है, क्योंकि भाषा ही उसकी भावी शिक्षा का आधार है। बच्चों को विद्यालय में ऐसे अवसर मिलने चाहिए जिनसे उनके शब्द भंडार में निरंतर वृद्धि हो सके। कहानी गढ़ना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण गतिविधि हो सकती है। इससे बच्चों की कल्पना को पंख मिलते हैं।

12/7/15 NAME: VIPUL CLASS III SEC: F ROLL: 11

1. एक जंगल में एक बड़ा पेड़ था।
2. उस पेड़ पर एक विषैला साँप लिपटा था।
3. उसी पेड़ पर तीन चींटियाँ भी थीं।
4. तीनों चिटियों के हाथों में केले थे।
5. उसमें से एक चींटी साँप की तरफ इशारा थी।
6. शायद उन्हें साँप से डर लग रहा था।
7. साँप उन्हें निगल जाना चाहता था।
8. चींटियाँ अपनी जान बचा कर भाग निकलीं।
9. साँप पूरे जंगल मे चींटियों को ढूढ़ता रहा, प नहीं मिलीं।
10. अर्थात् साँपें ताकतवर तो होते हैं लेकिन चीं उनसे ज्यादा चालाक होती हैं।

बालमन कुछ कहता है

मुझे स्कूल जाना अच्छा लगता है

Class
Date
Page

मेरा नाम दिलशाद है। मुझे स्कूल जाना अच्छा लगता है। हमारी क्लास टीचर बहुत अच्छी हैं। वो किसी को नहीं मारती हैं। रोज स्कूल में खेल कराती हैं। हम सब चित्र बनाते हैं। मैडम बहुत तारीफ करती हैं। वो हम सब के चित्रों को क्लास की दीवार पर लगा देती हैं। सब बच्चे बहुत खुश होते हैं। मैं जब रोज स्कूल जाता हूँ।

दिलशाद
कक्षा - IV

स्कूल – शांति बाल निकेतन, पांडव नगर
दिल्ली – 08

लेखकों के लिए दिशानिर्देश

- लेख सरल भाषा में तथा रोचक होना चाहिए।
- लेख की विषय-वस्तु 2500 से 3000 या अधिक शब्दों में डबल स्पेस में टंकित होना वांछनीय है।
- चित्र कम से कम 300 dpi में होने चाहिए।
- तालिका, ग्राफ़ विषय-वस्तु के साथ होने चाहिए।
- चित्र अलग से भेजे जाएँ तथा विषय-वस्तु में उनका स्थान स्पष्ट रूप से अंकित किया जाना चाहिए।
- शोध-पत्रों के साथ कम से कम सारांश भी दिया जाए।
- लेखक लेख के साथ अपना संक्षिप्त विवरण तथा अपनी शैक्षिक विशेषज्ञता अवश्य भेजें।
- शोधपरक लेखों के साथ संदर्भ की सूची भी अवश्य दें।
- संदर्भ का प्रारूप एन.सी.ई.आर.टी. हाउस स्टाइल के अनुसार निम्नवत होना चाहिए–

  सेन गुप्त, मंजीत. 2013. *प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा*. पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली.

लेखक अपने मौलिक लेख या शोध-पत्र सॉफ़्ट कॉपी (यूनीकोड में) के साथ निम्न पते पर या ई-मेल पर भेंजे –

अकादमिक संपादक
प्राथमिक शिक्षक
प्रारंभिक शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016
ई-मेल – prathamik.shikshak@gmail.com

रजि. नं. 32427/76

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING